मनुष्य

गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु ?

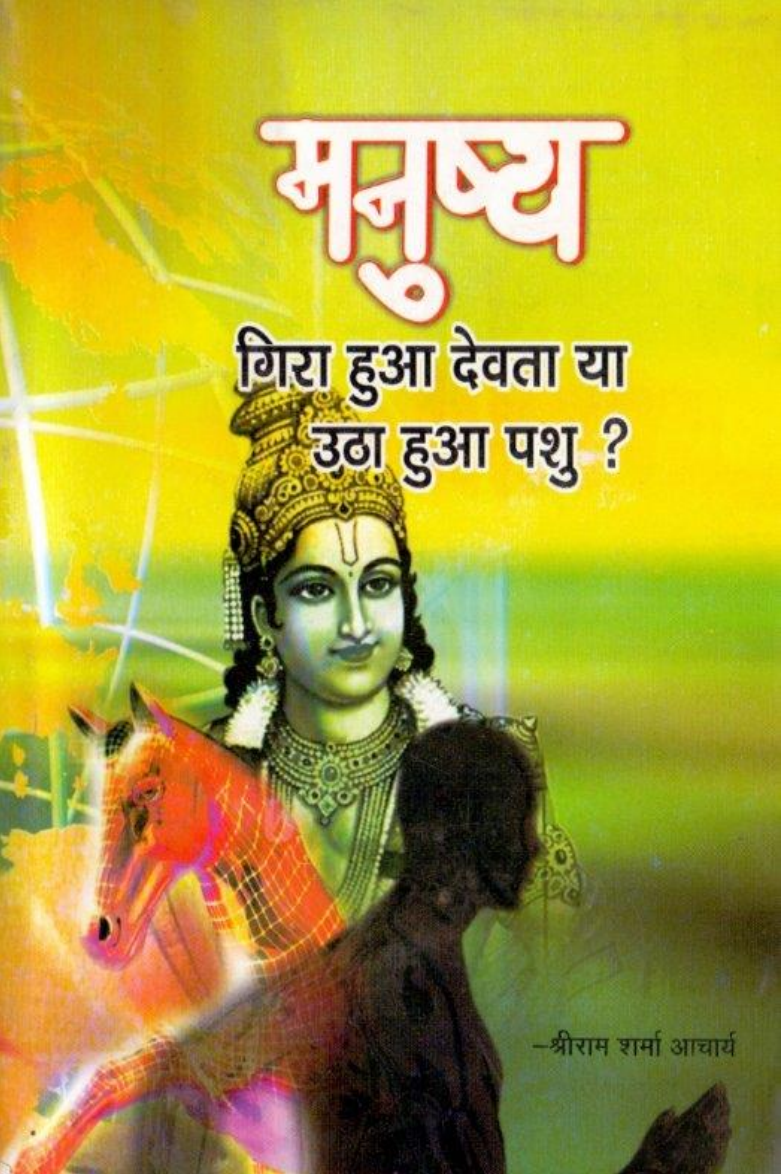

–श्रीराम शर्मा आचार्य

मनुष्य गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु ?

❑

लेखक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❑

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : १९.०० रुपये

विषय-सूची

अद्‌भुत स्रष्टा के अद्‌भुत रहस्य	३
प्राण सत्ता का उदय और विकास स्रोत	१७
गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु	३३
अमीबा से नहीं, मनुष्य ईश्वर की इच्छा से बना है	४५
मान भी लें कि विकास क्रम सही है, पर	५६
प्रत्यक्ष से भी विचित्र अदृश्य संसार	७७
विकासवाद अधूरी और एकांकी मान्यता	८८

प्रकृति का भंडार इतना विशाल है कि उसे जितना खोजा जा सके उतना ही कम है। भौतिक विज्ञान से बढ़कर चेतना विज्ञान है। जड़ शक्तियों की तुलना में चेतना शक्तियों की क्षमता एवं उत्कृष्टता का बाहुल्य स्वीकार करना ही पड़ेगा।

मनुष्य का कर्तव्य उसकी सफलताओं का कारण है, यह तथ्य सर्वविदित है। पर यह मान्यता भी एक अंश तक ही सही है। इसके साथ एक कारण और भी जुड़ा हुआ प्रतीत होता है—निर्धारित नियति। भले ही वह अपने ही पूर्व संचित कर्मों का फल ही हो, या उसका संचालन किसी अदृश्य से संबंधित हो।

प्रकृति के अद्‌भुत रहस्यों में से कुछ को मनुष्य ने एक सीमा तक ही जाना है। अभी बहुत बड़ा क्षेत्र अनजाना और अछूता पड़ा है।

अद्‌भुत स्रष्टा के अद्‌भुत रहस्य

*

लिंकन की भी प्रथम धर्म-पत्नी फैशनेबुल थीं, वह गृह-व्यवस्था, कविता तथा चित्रकला की शौकीन थीं, केनेडी की भी। दोनों लिबरल पार्टी के सदस्य थे। लिंकन १८६१ में प्रेसीडेंट बने, केनेडी १९६१ में। लिंकन के प्राणों की सर्वाधिक चिंता केनेडी नामक समकालीन व्यक्ति को रहती थी, केनेडी के सुरक्षार्थ उनका निजी सचिव लिंकन सर्वाधिक सतर्क रहता था। दोनों गोली से मारे गए व शुक्रवार के ही दिन। लिंकन की मृत्यु के बाद उनका पद सँभाला दक्षिणी उपराष्ट्रपति जान्सन ने, और केनेडी की मृत्यु के बाद भी इस जिम्मेदारी को सँभालने वाले का नाम जान्सन ही था। वे दक्षिण से आए उपराष्ट्रपति थे।

क्या यह अद्‌भुत साम्य मात्र संयोग है ? या इसके पीछे कोई सूक्ष्म आत्मिक विधान निहित है ?

अमरीकी पादरी जिमविशप की मान्यता है कि राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने ही राष्ट्रपति जान एफ० केनेडी के रूप में पुनर्जन्म ग्रहण किया। उन्होंने दोनों के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन कर, इन तथ्यों की ओर लोगों का ध्यान खींचा है।

लिंकन व केनेडी दोनों में गहरी धार्मिक भावना थी व बाइबिल के प्रेमी पाठक भी दोनों थे। दोनों विश्व-शांति के उपासक थे। दोनों में ४० वर्ष की आयु में ही राष्ट्रपति बनने की इच्छा हुई। नीग्रो स्वतंत्रता के लिए दोनों ने निरंतर प्रयास किया। लिंकन के चार बच्चे थे, दो मर गए थे। शेष दो से उन्हें गहरा प्यार था। केनेडी के भी चार बच्चे हुए, दो का निधन हो गया। उन्हें भी वैसा ही प्यार था। दोनों अपने बच्चों से विनोद-परिहास बहुत करते थे।

सन् १२५५ में जन्मे फ्रांस के संत लुइस एक महान् क्रांति द्रष्टा थे। ५३६ वर्ष बाद सन् १७५४ में सम्राट् लुइस १६वें का जन्म

हुआ। दोनों के जीवन काल में ५३६ वर्ष का अंतर था और दोनों की देह यानी रूपाकार में भी एकता थी। इसके अतिरिक्त दोनों के जीवन में असाधारण समानताएँ थीं।

संत लुइस की छोटी बहिन का नाम इसाबेल था, वह उनसे १० वर्ष बाद पैदा हुई। सम्राट् लुइस की बहिन भी १० वर्ष ही छोटी थी। नाम था एलिजाबेथ। दोनों के पिताओं की मृत्यु उनकी आयु के १२वें वर्ष में हुई। १५वें वर्ष में संत लुइस बीमार हुए और सम्राट् लुइस भी उसी आयु में उसी रोग से ग्रस्त हुए। दोनों का विवाह १७वें वर्ष में हुआ व २०वें वर्ष दोनों को बालिग अधिकार मिले।

संत लुइस ने २६वें वर्ष में हेनरी तृतीय से और सम्राट् लुइस ने २६वें जार्ज तृतीय से शांति वार्ता की। दोनों के पास उनकी ३४ वर्ष की उम्र में पूर्व के एक राजकुमार का राजदूत, राजकुमार के ईसाई बनने की इच्छा से आया। ३५ वर्ष की उम्र में संत लुइस क्रांतिकारी विचारों के कारण नजर बंद किए गए। ३५ वर्ष की ही आयु में सम्राट् लुइस के सभी सत्ताधिकार छिन गए। इसी आयु में संत भी पद से हटाए गए, सम्राट् भी। आयु के उसी वर्ष में यानी ३६वें वर्ष में संत लुइस ने ट्रिस्टन की स्थापना की व क्रांति का उद्घोष किया। सम्राट् लुइस ने भी ३६वें वर्ष वैस्टीन के पतन के साथ क्रांति का शुभारंभ किया। संत ने उसी वर्ष जैकन की स्थापना की, सम्राट् ने जैको बिनस का सूत्रपात किया। संत के ३६वें वर्ष में इसाबेल ऐन्गुलेम की मृत्यु हुई। सम्राट् के ३६वें वर्ष में इसावेल्ड एन्गुलेम का जन्म हुआ। दोनों ३८ वर्ष के थे, जब मातृ-सुख से वंचित हो गए। ३६वें वर्ष संत अवकाश ग्रहण कर जैकोबिन बने। सम्राट् ने ३६वें वर्ष में जैकोबिन को जीवन अर्पण किया। उसी वर्ष संत मैडेलियम प्रांत में वापस पहुँचे। ३६वें वर्ष में ही सम्राट् लुइस मैडेलिन के अंतिम संस्कार में पैरिस में सम्मिलित हुए।

इस तरह दोनों के जीवन की घटनाओं में अद्भुत साम्य है। सभी घटनाएँ ५३६ वर्ष के अंतर से मानो स्वयं को दुहराती रहीं।

नैपालियन और ड्यूक आफ विलिंगडन के जीवन क्रम में तारीखों की दृष्टि से अद्‌भुत समता है, दोनों १५ अगस्त १७६० को जन्मे। दोनों के पिताओं की मृत्यु उनके सोलहवें वर्ष में हुई। ड्यूक को जिस दिन जनरल का पद मिला, उसी दिन नेपोलियन की नियुक्ति लेफ्टिनेंट पद पर हुई। आश्चर्य है कि वे दोनों मरे भी एक ही दिन।

हिटलर और नेपोलियन के जीवन में भी तिथियों संबंधी ऐसी ही समता है। वर्षों की दृष्टि से १२६ वर्ष का अंतर जरूर है, पर उनके क्रिया-कलापों में कितनी ही घटनाएँ पुनरावृत्ति जैसी हैं। नैपोलियन २० अप्रैल, १७६० में जन्मा और हिटलर २६ अप्रैल १८७६ को। फ्रांस में राज्य-क्रांति १७८६ में हुई और जर्मनी में १६१८ को, नेपालियन ने १८०४ में सत्ता हथियायी और हिटलर ने १६३३ में। नैपोलियन ने रूस पर हमला १८१२ में किया और और हिटलर ने १६४१ में। वियना संधि १८१५ में हुई और जर्मन संधि १६४४ में। यह ऐसे संयोग हैं, जिनके आधार पर हिटलर को नैपालियन का दूसरा संस्करण कहा जा सकता है।

सुप्रसिद्ध दार्शनिक एफ. एम. विलिस ने भारतीय धर्म के आत्मा के विकास के सिद्धांत को पूरी तरह माना है और लिखा है कि कई बार एक जन्म के छोड़े हुए अधूरे कार्यों को पूरा करने के लिए श्रेष्ठ आत्माएँ दुबारा जन्म लेती हैं और अगले जन्म के विचार तथा चिंतन में अद्‌भुत साम्य इस बात का प्रमाण होता है। श्री विलिस ने ऐसे अनेकों जोड़े ढूँढ़े थे और उनके द्वारा इस दर्शन की पुष्टि की थी। उनका कहना है कि ईसा मसीह जो काम शेष छोड़ गए थे, उन्होंने दुबारा अपोलिनियस ऑफ रियाना के रूप में जन्म लेकर पूरा किया। ग्लैडस्टोन पहले जन्म में सिसरो थे, श्रीमती बीसेंट पहले व्रनो थीं। शोपेनहावर के विचार बौद्धमत से इतने मिलते-जुलते हैं कि उन्हें बुद्ध ही कहा जा सकता है।

कोई अनिवार्य नहीं है कि ये संयोग उसी व्यक्ति का दूसरे रूप में पुनर्जन्म ही हो। परंतु ऐसे व्यक्तियों के जीवन परस्पर एक ही सूत्र में संबद्ध रहते हैं, इसकी पूरी संभावना होती है।

आयरलैंड के कुक हैवन शहर में एक ही मकान में रहने वाले दो परिवारों में कुछ मिनटों के अंतर से दो पुत्र हुए। एक दंपत्ति ने अपने बच्चे का नाम एलेनर ग्रेडी रखा दूसरे ने अपने बच्चे का नाम पैट्रिक रखा। दोनों बच्चे धीरे-धीरे अपने जीवन के स्वाभाविक विकास क्रम की ओर चल पड़े।

पैट्रिक और एलेनर दोनों अलग-अलग खेलते, अलग-अलग रहते। किंतु एक दिन दोनों रोते-रोते घर पहुँचे, दोनों के दाहिने पैर पर एक ही स्थान पर चोट लगी थी, माता-पिता ने पट्टी कर दी, कोई ध्यान नहीं दिया। दोनों बच्चे पढ़ रहे थे, तब कई बार ऐसा हुआ कि परीक्षा में पैट्रिक को ३०० अंक मिले, तो दूसरे स्कूल में पढ़ रहे ग्रेडी को भी उतने ही अंक मिले। जिस दिन एलेनर के विवाह संबंध की बात चली, ठीक उसी दिन पैट्रिक की भी विवाह संबंधी बात चली और संयोग की बात यह कि दोनों का विवाह एक ही दिन हुआ। दोनों की शादी एक ही दिन तय हुई और पहला बच्चा भी एक ही दिन हुआ।

बचपन में एक ही मकान में रहे एलेनर और पैट्रिक बड़े होने पर आपस में मिले, तब उन्होंने इन समानताओं पर ध्यान दिया और अंतिम समय भी वे समानता की एक और मिसाल छोड़ गए कि दोनों व्यक्तियों की मृत्यु भी एक ही दिन, एक ही समय पर हुई। उस समय दोनों अपने-अपने खेत में काम कर रहे थे।

यह घटना जीवन की विचित्र रहस्यमयता को प्रतिपादित तो करती ही है, यह भी बताती है कि मनुष्य का अस्तित्त्व शरीर तक ही सीमित नहीं है। बल्कि उसकी मूल सत्ता शरीर से बहुत सूक्ष्म और स्थूल नियमों से परे है। मनीषियों ने उस सूक्ष्म सत्ता को आत्मतत्त्व या जीव सत्ता का नाम दिया है और कहा है कि वह

काय-कलेवर तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि विकसित होकर विश्व ब्रह्मांड की विराट् चेतना से भी जा जुड़ती है।

पैट्रिक और 'ऐलेनर' के जीवन की समानता से भी अधिक विचित्र समानताएँ थीं, इटली के सम्राट् डंबर्टो प्रथम तथा वहीं के एक होटल मालिक की। उस होटल मालिक को तो सम्राट् का प्रतिरूप ही कहा जाता था। दोनों की सूरत-शक्ल और चेहरे-मोहरे इस प्रकार मिलते थे कि डंबर्टो तथा होटल मालिक को एक समान कपड़े पहनाकर, खड़ा कर दिया जाता तो उनकी पत्नियों के लिए भी पहचानना असंभव होता कि, कौन हमारा पति है ? सूरत-शक्ल से ही नहीं, नाम भी दोनों का एक ही था। पाठक किसी भ्रम में न पड़ जाएँ, इसलिए यहाँ एक को डंबर्टो प्रथम तथा दूसरे डंबर्टो को होटल मालिक कहा जा रहा था।

सम्राट् डंबर्टो और होटल मालिक डंबर्टो का जन्म १४ मार्च १८४४ को प्रातः ठीक साढ़े दस बजे हुआ था। सम्राट् डंबर्टो टूरिन के राजमहल में जन्मे, तो होटल मालिक एक झोंपड़े में। २ अप्रैल १८६६ को सम्राट् डंबर्टो का विवाह हुआ और उनकी पत्नी का नाम मर्घरिटा था। होटल मालिक का विवाह भी उसी दिन हुआ और उसकी पत्नी का नाम भी मर्घरिटा था। एक ही दिन युवराज सिंहासनारूढ़ हुए और दूसरे डंबर्टो ने होटल खोला। २८ जुलाई १९०० को होटल मालिक की हत्या किसी ने गोली मारकर कर दी। उसी दिन उसी समय सम्राट् डंबर्टो को भी एक पारितोषिक वितरण के समय गोली मार दी गयी।

ये घटनाएँ सिद्ध करती हैं कि सूक्ष्म चेतना की सत्ता स्थूल सत्ता से महान् है और मनुष्य को किसी उद्देश्य से इस पृथ्वी पर भेजती है। अपने स्वरूप को भुलाने पर वह इन संकेतों से समझाती भी है।

ऐसे साम्य-संयोगों और असाधारण सादृश्यों की प्रचुरता आत्म-सत्ता के किसी गूढ़ नियम का संकेत करती है। वस्तुतः

प्रकृति के अद्‌भुत रहस्यों में से कुछ को मनुष्य ने एक छोटी सीमा तक जाना है और उनको वैज्ञानिक शोधों एवं यंत्र उपकरणों के माध्यम से उपयोग में लाकर लाभ भी उठाया है। आदिम कालीन मनुष्य का ज्ञान स्वल्प था—अन्य जीव-जंतुओं की जानकारी कम थी, इसलिए उन्हें वे लाभ नहीं मिल पाए, जो आज का अन्वेषक मनुष्य प्राप्त करके, सुविधा-साधन उपलब्ध कर रहा है।

प्रकृति का भंडार इतना विशाल है कि उसे जितना खोजा जा सके उतना ही कम है। भौतिक विज्ञान से बढ़कर चेतना विज्ञान है। जड़ शक्तियों की तुलना में चेतना शक्तियों की क्षमता एवं उत्कृष्टता का बाहुल्य स्वीकार करना ही पड़ेगा। इस दिशा में और भी अधिक खोज होनी चाहिए। अध्यात्म विज्ञान की शोध में ही हमारी दिलचस्पी एवं तत्परता और भी अधिक होनी चाहिए। प्राचीन काल में ऋषि-तपस्वियों ने बहुत कुछ खोज की थी, पर वह उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल थी। उन शोधों के बाद अब कुछ ढूँढना शेष नहीं रहा, ऐसी बात नहीं है। फिर प्राचीन काल की उपलब्धियाँ भी तो लुप्त हो गईं। ऐसी दशा में, उस दिशा में हमें वैज्ञानिक आत्म विज्ञान की शोधों में नये सिरे से तत्पर होना चाहिए।

● जीवन एक पहेली—

मनुष्य का कर्तृत्व उसकी सफलताओं का कारण है, यह तथ्य सर्वविदित है। पर यह मान्यता भी ससीम है। इसके साथ एक कारण और भी जुड़ा हुआ प्रतीत होता है—निर्धारित नियति। भले ही वह अपने ही पूर्व संचित कर्मों का फल ही हो या उसका संचालन किसी अदृश्य से संबंधित हो।

संख्या के साथ व्यक्ति विशेष का संबंध क्यों होता है ? यह तो नहीं कहा जा सकता, पर होता अवश्य देखा गया है। घटनाओं पर आश्चर्य करना भर पर्याप्त नहीं, इसके आधार को भी जानना

चाहिए, जिससे उस नियति शृंखला के अनुकूल चलकर लाभान्वित होना और प्रतिकूलता से बच निकलना संभव हो सके।

तिथियों का कुछ विचित्र संयोग देखिए—चंदवरदाई और पृथ्वीराज चौहान घनिष्ट मित्र थे। वे दोनों एक ही दिन जन्मे और एक ही दिन मरे भी।

महाकवि शेक्सपियर के लिए २३ अप्रैल जन्म देने भी आई और वही २३ अप्रैल उन्हें उठा भी ले गई।

विवेकानंद की शिष्या भगिनी निवेदिता के जीवन में अक्टूबर मास महत्त्वपूर्ण घटनाएँ प्रस्तुत करता रहा। वे २४ अक्टूबर १८६७ में जन्मी २२ अक्टूबर १८६५ को उन्होंने विवेकानंद को अपना समर्पण दिया। २० अक्टूबर को उन्होंने महर्षि अरविंद से महत्त्वपूर्ण भेंट की और १३ अक्टूबर १९११ में वह संसार छोड़कर चली गईं।

वीर सावरकर के जीवन में फरवरी मास अशुभ रहा। हेग के अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने उन्हें २५ फरवरी १९११ को सजा दी और ठीक ५५ वर्ष बाद २६ फरवरी १९६६ को उनकी मृत्यु हो गई।

लोकमान्य तिलक के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ मंगलवार को घटित होती रही हैं। उनका केशरी पत्र मंगलवार को प्रकाशित हुआ। स्वतंत्रता संग्राम में वे मंगल को पकड़े गए और जमानत पर भी मंगल के दिन ही छूटे। मंगलवार से मुकदमा चला और जेल से छूटने का दिन भी वही वार था।

शुक्रवार को लोग शोक दिवस मानते हैं। ईसा, सुकरात, गांधी, लिंकन, केनेडी आदि कितने महापुरुषों को शुक्रवार ने उदरस्थ किया है।

किन्हीं के जीवन में कुछ अंकों की विशेष महत्ता रही है। प्रिंस विस्मार्क को ३ का अंक कुछ विलक्षण संयोग लाता रहा। उन्होंने अपने तीन नाम रखे लायन, वर्ग-शोवासेनी और विस्मार्क। उन्हें तीन उपाधियाँ मिलीं प्रिंस, ड्यूक तथा काउंट। वे तीन कालेजों में पढ़े। उनके तीन बेटे हुए। वे तीन देशों में राजदूत रहे। वे तीन युद्धों में

लड़ने गए। इन्होंने तीन घोड़े गँवाये। तीन बार इन पर घातक आक्रमण हुए। तीन बार उन्होंने त्याग पत्र दिए।

लालबहादुर शास्त्री के लिए १० के अंक से कुछ अनोखे संबंध थे। वे अंग्रेजी वर्ष के दसवें महीने अक्टूबर में जन्मे। उन्होंने मंत्रित्व आदि १० महत्त्वपूर्ण पद सँभाले। उनके दिल्ली निवास स्थान का नंबर १० था। उनकी मृत्यु १० तारीख को हुई। रोमन लिपि में लालबहादुर शब्द लिखने में १० अक्षर प्रयुक्त होते हैं।

साइप्रस के शासनाध्यक्ष मकरिआस के लिए १३ का अंक कुछ ऐसे ही संयोग लाता रहा। वे १३ अगस्त १९१३ को जन्मे। १३ वर्ष की आयु में चर्च में भर्ती हुए। १३ नवंबर १९४६ में उन्होंने प्रोस्ट दीक्षा ली। १३ जून १९४८ में वे विशप बने तथा राजगद्दी पर बैठे। १३ मार्च १९५१ में यूनान के राजा ने उनका अभिनंदन किया। १३ दिसंबर १९५९ को वे राष्ट्रपति चुने गए।

विश्व-विख्यात चित्रकार अल्मा-टाडमा के जीवन में "१७" की संख्या का महत्त्व एक बड़े जादू की तरह था—यह बात वे स्वयं स्वीकार करते हुए बताया करते थे—"मैं १७ वर्ष की उम्र का था, तब १७ तारीख को ही अपनी प्रिय पत्नी से मिला। मेरे पहले मकान का नंबर १७ था और जब दुबारा मकान बनवाने की बात आई तो बहुत प्रयत्न करने पर भी वह १७ अगस्त से पहले प्रारंभ नहीं हो सका। नवंबर की १७ तारीख थी, जब मैंने नूतन-गृह में प्रवेश किया। अपने लिए जब "सेंटजोन्स बुड में चित्रकारी के लिए कमरा लिया तो वह भी १७ नंबर ही निकला।"

निःसंदेह "अक्षरों" की महत्ता बहुत अधिक है, पर लगता है कि संसार का नियमन संख्या द्वारा हो रहा है। तभी तो कई बार ऐसे विचित्र सांख्यिकी संयोग उपस्थित हो जाते हैं कि गैलीलियो जैसे वैज्ञानिक तक को यह मानना पड़ा था कि संसार गणित की भाषा में बोल रहा है—विधाता संसार का हिसाब-किताब संख्या में रखता है। इस तथ्य की पुष्टि में सुप्रसिद्ध भविष्यवक्ता और

ज्योतिषी कीरो ने आश्चर्यजनक घटनाएँ अपनी पुस्तक "कीरोज बुक ऑफ नंबर्स" में संकलित की हैं।

ए० बी० फ्रेंच के जीवन की घटनाओं में ७ संख्या का महत्त्व बताते हुए कीरो लिखते हैं कि—"उनका जन्म ७वें महीने की ७ तारीख को हुआ था। अपनी ७ वर्ष तक की उम्र में वे कभी बीमार नहीं हुए। ७वीं कक्षा तक वे कभी फेल नहीं हुए। अपने विवाह के लिए उन्होंने ७वीं लड़की को चुना और यह एक विस्मय की बात थी कि उस लड़की के लिए भी फ्रेंच ७वें ही लड़के थे। उनके जीवन की अधिकांश घटनाएँ ७ के ही साथ घटित हुईं।

उनके एक चाचाजी थे। उनकी धर्मपत्नी एक बार रेल यात्रा कर रही थीं। रेलगाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गई। जिस डिब्बे में बैठी थीं उसका नंबर ८६३१ था, एक बार लाटरी खरीदी उसका नं. ८६३१ था, उसमें कुछ नहीं निकला। एक बार स्वयं भी एक ट्रक की चपेट में आ गए, संयोग से उसका भी नंबर ८६३१ ही था। उनके चार पुत्र हुए, चारों मर गए। उन लड़कों की मृत्यु क्रमशः ८, ६, ३ और १ वर्ष की आयु में हुई और इन संख्याओं को मिलाने पर वही ८६३१ संख्या बनती है, जिसने दुर्भाग्य की दृष्टि से जीवन भर उनका पीछा नहीं छोड़ा।

लोगों का अनुमान है कि १३ की संख्या अशुभ होती है, किंतु कीरो की दृष्टि में यह कोई तर्कसंगत बात नहीं है, उन्होंने अनेक उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि १३ की संख्या को जहाँ अशुभ माना जाता है, वहाँ वह कितने ही लोगों के जीवन में सौभाग्यदायक संख्या सिद्ध हुई।

उत्तरी बर्टन यार्क्स के डा. रूड के जीवन में १३ की संख्या दुर्भाग्य सूचक के रूप में आई। १३ वर्ष की आयु में वे बीमार पड़े। १३ दिन तक घोर कष्ट में रहे। १३ तारीख को ही हृदय की बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो गई। गाँव के क्लब में, जिसमें वे कुल १३ सप्ताह रहे, के फंड में उनकी मृत्यु के समय कुल १३ शिलिंग

शेष थे। उनकी मृत्यु का दिन, उनके सबसे छोटे बच्चे की १३वीं वर्षगाँठ थी। उनके अंतिम संस्कार के लिए १३ सौ मील की यात्रा करनी पड़ी। अंतिम संस्कार के समय कुल १३ सदस्य उपस्थित हुए, उनके परिवार के सदस्यों की संख्या भी १३ ही थी। उनके बड़े लड़के को नेवी में नौकरी मिली और साथ में जो नंबर मिला वह भी १३ ही था। जिस जहाज में काम करना था उसका नंबर भी १३ ही था। रूड का नाम फूवाह था, यह नाम बाइबिल के १३वें छंद में आता है। उनकी मृत्यु के समय शोक-संवेदना के जो तार आए उनकी संख्या भी १३ ही थी।

यह तो थी दुर्भाग्य की बात। अब उसकी बात जिसके साथ १३ का अंक सौभाग्य के साथ जुड़ा हुआ है। डेनवर कोलराडो के धनाढ्य उद्योगपति शेरमैन का जन्म १३ तारीख को हुआ। सगाई १३ तारीख को हुई और विवाह भी १३ जून १६१३ को हुआ, उनकी पत्नी का जन्मदिन भी १३ तारीख का ही था। उनके विवाहोत्सव में भी कुल १३ ही अतिथि थे। उन्हें जो फूल भेंट किए गए, उनकी संख्या भी १३ थी। १३ की संख्या उनके जीवन में सदैव लाभदायक रही।

संख्या की विचित्रता का संसार बड़ा व्यापक है। जन्म, मृत्यु और जीवन काल की घटनाओं को ध्यानपूर्वक देखें, तो पता चलता है कि हर व्यक्ति के जीवन में जोड़, बाकी, गुणा, भाग काम करता है और यही तथ्य इस बात का प्रमाण है कि प्रकृति जड़ नहीं है, वरन् उसमें एक मस्तिष्कीय प्रक्रिया हर क्षण, हर घड़ी काम कर रही है।

इस तथ्य का प्रतिपादन संख्याओं की, गणित की विचित्रता प्रकट करती है। फ्रांस के प्रथम सम्राट् हेनरी १४ मई १०२६ को सिंहासन पर बैठे, जबकि वहाँ के आखिरी सम्राट् का नाम भी हेनरी ही था। १४ मई १६१० को उनकी हत्या कर दी गई थी। जिस तारीख को एक को सिंहासन मिला, वहीं दूसरे को दूसरी १४ मई को मृत्यु का उपहार। इस बीच वहाँ के अन्य सभी राजाओं के

जीवन में १४ संख्या का सदैव महत्त्व बना रहा। हेनरी १४वें का पूरा नाम हेनरी डिबारबन था। उसके पूरे नाम में १४ अक्षर होते हैं। १४वीं शताब्दी में १४वीं १० वर्षीय काल सारणी (डिकेड) में ईसा के जन्म से १४ वर्ष बाद हेनरी चतुर्थ का जन्म १४ मई को ही हुआ। सन १५५३ में उसका जन्म हुआ, यह सब अक्षर जोड़ने से भी १४ की ही संख्या आती है। १४ मई को ही हेनरी द्वितीय ने फ्रांस का राज्य विस्तार किया था। हेनरी चतुर्थ की पत्नी का जन्म भी १४ मई को हुआ। हेनरी तृतीय को १४ मई के दिन युद्ध मोर्चे पर जाना पड़ा। हेनरी चतुर्थ ने आयवरी का युद्ध १४ मार्च १५९० को जीता। १४ मई १५९० में उनकी फौज की पेरिस के फाक्सवर्ग में हार हुई, नवंबर मास की १४ तारीख ही थी, जिस दिन फ्रांस के १६ बड़े व्यक्तियों ने हेनरी चतुर्थ की सेवा करते-करते मर जाने की ऐतिहासिक प्रतिज्ञा की थी। इसी के ठीक २ वर्ष बाद १४ नवंबर को फ्रांस की पार्लियामेंट ने एक कानून पास कर पापलबुल को हेनरी के स्थान पर सत्ताधिकारी चुना। १४ दिसंबर १५९६ को सवाय के ड्यूक ने अपने आपको हेनरी को आत्म-समर्पण किया। १४ तारीख ही थी, जिस दिन लार्ड डफिन ने लुई १३वें के रूप में बपतिस्मा ग्रहण किया।

१४ मई १६४३ को हेनरी चतुर्थ के पुत्र लुई १३वें की मृत्यु हुई। लुई १४वें १६४३ में सिंहासन पर बैठे, सन् के चारों संख्याओं का योग भी १४ ही होता है। उन्होंने ७७ वर्ष (७ + ७ = १४) तक का जीवन जिया और १७१५ में मृत्यु हुई। यह चारों अक्षर जोड़ने पर भी १४ की ही संख्या आती है। लुई १५वें ने कुल १४ वर्ष राज्य किया। इस प्रकार फ्रांस के सिंहासन पर १४ का महत्त्व सदैव बना रहा।

जर्मनी के शासक चार्ल्स चौथे का विश्वास था कि उनके जीवन में चार की संख्या सौभाग्य सूचक है, सो उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चार को महत्त्व दिया। वह चार रंग की

पोशाक पहनते थे और दिन में चार बार पहनते थे। चार प्रकार का भोजन, चार मेजों पर दिन में चार बार करते थे, चार प्रकार की शराब पीते थे, उनके अंग रक्षक चार थे, बग्घी में चार पहिए और चार ही घोड़े जुतते थे। उनके राज्य में चार गवर्नर नियुक्त थे, चार सेनापति, चार ड्यूक और कप्तान भी चार ही थे। उनके चार महल थे, उनमें चार-चार ही दरवाजे थे। हर महल में चार-चार कमरे, हर कमरे में चार-चार खिड़कियाँ थीं और यह एक संयोग ही था कि मृत्यु के समय चार डॉक्टर उपस्थित थे, उन्होंने चार बार "गुड बाय" कहा और ठीक चार बजकर चार मिनट पर इस संसार से विदा हो गए।

संसार कितना विचित्र और विलक्षण है। इसके रहस्यमय परत क्रमशः ही खुले और खुलते जा रहे हैं। मानवी बुद्धि प्रकृति के रहस्यों को धीरे-धीरे ही जानने-समझने लायक बनी है और बनती चली जा रही है। अंकों का क्या—कुछ संबंध मनुष्य जीवन के साथ जुड़े हुए घटनाक्रमों से भी है ? यह तथ्य की यथार्थता कभी न कभी स्पष्ट होकर ही रहेगी।

● अंतर्जगत् के संदेश—

मनुष्य क्षुद्र जीव सत्ता से क्रमशः विकसित होता हुआ बंदर से आदमी बना—यह सिद्धांत अपने आप में अपूर्ण है, क्योंकि विज्ञान अभी जीवन की इन विचित्र पहेलियों को ही नहीं सुलझा सका, तो पृथ्वी पर मानवी सत्ता का प्राकट्य कैसे हुआ, यह किस आधार पर कहा जा सकता है। मानवी सत्ता की विलक्षण सामर्थ्य का एक और उदाहरण इटली निवासी अल्बर्टो अस्करी के साथ स्पष्ट घटी घटना से मिलता है। अल्बर्टो अक्सरी को सन् १९५३ तथा १९५४ में सर्वप्रथम आने पर पुरस्कार मिल चुका था। उनके जीवन में भी इसी तरह का लोमहर्षक क्षण आया, जब उनकी मृत्यु उन्हें पूर्व ही आकर दर्शन दे गई। १९५५ में जिन दिनों वह पुनः रेस

में भाग लेने की तैयारी कर रहे थे। उन्हें २० वर्ष पुरानी एक घटना याद हो आयी। तब अल्बर्टो १६ वर्ष के बालक थे। उन दिनों कार-रेस में उनके पिता एंटोनिया अस्करी शीर्ष स्थान पर थे। उस वर्ष की प्रतियोगिता में पिता के साथ कार में पुत्र अल्बर्टो भी दौड़ रहे थे। जिस समय कार वायलोन का घना जंगल पार कर रही थी, एकाएक एक काली बिल्ली ने रास्ता काटा। बिल्ली को बचाने के लिए एंटोनियो ने तेजी से स्टीयरिंग काटा, किंतु तीव्र गति से चल रही गाड़ी नियंत्रण खो बैठी और एक पेड़ से जा टकराई। एंटोनियो का घटनास्थल पर ही देहावसान हो गया। न जाने क्यों, उसी क्षण अल्बर्टो को जो अब तक सकुशल था, एकाएक ऐसा आभास हुआ कि २० वर्ष बाद जब वह ३६ वर्ष का होगा, उसकी भी इसी तरह मृत्यु हो जायेगी। यह आभास कुछ ही क्षणों में विश्वास में बदल गया।

दुर्घटना के चार दिन पूर्व जब एकाएक अल्बर्टो की तबियत खराब हुई, तब तो उनका विश्वास परिपुष्ट हो गया, क्योंकि उनके पिता की भी ठीक चार दिन पूर्व तबियत बिगड़ी थी, उनका मन रेस में भाग लेने का नहीं कर रहा था, किंतु उसके प्रशिक्षक भूतपूर्व कार रेस चैंपियन लुई बिल्लोरसी ने उन्हें आश्वस्त किया—ऐसा कुछ नहीं होगा। उन्होंने इस अंधविश्वास जैसी भीति के लिए अल्बर्टो को फटकार दी, किंतु नियति तो जैस अभेद्य हो, अल्बर्टो ने नियत समय पर प्रतियोगिता के लिए अंतिम अभ्यास के लिए अपनी कार स्टार्ट की। बिल्लोरसी की कार उसके पीछे थी। जैसे ही कार वायलोन के जंगल में उस स्थान पर पहुँची, ठीक वही २० वर्ष पूर्व का दृश्य—एक काली बिल्ली ने रास्ता काटा। अल्बर्टो ने हर चंद बचने की कोशिश की, किंतु कार एक दैत्याकार पेड़ से जा टकराई और अल्बर्टो ने वहीं अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी।

इस घटना से दैवी विधान की निश्चितता सिद्ध की जा सकती है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। किसी स्थान पर आग लगने

से पूर्व धुआँ निकलता है। वह एक प्रकार से इस बात का संकेत होता है कि अभी समय है, पानी डालकर आग लगने के संभावित संकट को टाला जा सकता है। किंतु कोई ध्यान न दे, तो ईश्वर-विधान का क्या दोष ?

विकासवाद सिद्धांत के जनक चार्ल्स डार्विन ने अपने निष्कर्षों को प्रमाणित करने के लिए जो अध्ययन-निरीक्षण किया, उसमें इन विचित्रताओं के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है। इस तरह के विलक्षण संयोगों को न तो डार्विन ने अपने अध्ययन में सम्मिलित किया और न ही इनका कोई कारण बताया है। आगे के अध्यायों में हम देखेंगे कि विकासवाद का वर्तमान सिद्धांत कितना एकांगी और अधूरा है। वह एक सीमा तक ही सही हो सकता है, उस सीमा तक जहाँ तक कि उससे मानवीय सत्ता जीवन चेतना की समर्थता और सशक्तता का नियम पुष्ट होता है।

❐ ❐

प्राण सत्ता का उदय और विकास स्त्रोत

*

बात उन दिनों की है जब चीन में ब्रिटेन शासन करता था। शँघाई (चीन) के एक गुरुद्वारे में आत्मसिंह नामक एक ग्रंथी रहता था। आत्मसिंह के सौम्य स्वभाव से लोग बहुत प्रभावित थे। वे जितने चरित्रवान् थे, उतने ही ईश्वर भक्त—उन्हें ईश्वरीय विधान पर अटूट आस्था थी।

दैवयोग से कुछ दिन पीछे बाबा सिंह की किसी ने हत्या कर दी। पुलिस ने आत्मसिंह पर संदेह किया और परिस्थिति का लाभ उठाकर उसे गिरफ्तार कर मुकदमा चला दिया। आत्मसिंह अपनी निर्दोषिता के कोई स्थूल प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके, इसलिए अंधे कानून ने उन्हें फाँसी की सजा दे दी।

फाँसी के लिए शंघाई से जल्लाद न मिलने पर हाँग-काँग से जल्लाद बुलाए गए। नियत समय पर फाँसी प्रारंभ हुई। गले में फाँसी का फंदा डालकर जैसे ही नीचे का तख्ता हटाया, एक जोर की धड़ाम की आवाज आई। रस्सा बीच से टूट गया। आत्मसिंह फर्श पर जा गिरे, उन्हें कोई चोट नहीं आई।

पदाधिकारी बड़े विस्मित हुए। मामला ब्रिटिश काउंसिल जनरल सरजान ब्रेनन के पास पहुँचा। उन्होंने कई विशेषज्ञ बुलाकर रस्से की जाँच कराई। विशेषज्ञ कोई कारण नहीं ढूँढ़ सके—रस्सा टूटा कैसे ? इस पर सभी आश्चर्यचकित थे। दूसरा रस्सा मँगाया गया। उसमें आत्मसिंह के वजन से चार गुना अधिक वजन के पत्थर लटकाकर रस्से की परीक्षा कर ली गई और दुबारा फाँसी की व्यवस्था की गई। इस बार बड़े-बड़े उच्च पदाधिकारी भी उपस्थित थे। जैसे ही दुबारा फिर फंदा डालकर लटकाया गया कि पुनः पहले जैसी आवाज हुई और रस्सा टूट गया। आत्मसिंह को कोई चोट नहीं आई। चीन में ब्रिटिश राजदूत सरह्यू नायपुल

ह्यूगेशन ने कहा—आत्मसिंह निर्दोष है, उसे फाँसी नहीं दी जा सकती, क्योंकि उसका रक्षक परमात्मा है।

ईश्वर के प्रति आस्था—उसका सतत सान्निध्य, मनुष्य में अद्‌भुत और विलक्षण शक्तियाँ जागृत् कर देता है। इस तरह के कई प्रमाणिक उदाहरण मिलते हैं। स्वामी विवेकानंद ने भी इस प्रकार के अनुभव का उल्लेख किया है। उन दिनों स्वामी जी हैदराबाद गए हुए थे। वहाँ कोई ब्राह्मण रहता था, उसके बारे में स्वामी जी ने सुन रखा था कि "वह मनुष्य न जाने कहाँ से अनेक वस्तुएँ उत्पन्न कर देता है।" वह उच्च खानदान का और शहर का नामी व्यापारी था। स्वामीजी उसके पास गए और अपने चमत्कार दिखाने को कहा। उस समय वह बेचारा बीमार था। भारतवर्ष में ऐसा विश्वास है कि अगर कोई पवित्र मनुष्य किसी के सिर पर हाथ रख दे तो उसकी बीमारी ठीक हो जाती है। वह ब्राह्मण स्वामी के समीप जाकर बोला—"भगवन् ! पहले आप मेरे सिर पर हाथ रख दें तो मेरा बुखार भाग जाए। अनंतर में अपने चमत्कार दिखाऊँगा।" स्वामीजी ने शर्त स्वीकार कर ली।

वह मनुष्य अपनी कमर में एक चिथड़ा पहने था। अन्य सब कपड़े उतारकर रख दिए। अब उसे केवल एक कंबल ओढ़ने को दिया गया। शीत के दिन थे और भी अनेक लोग एकत्रित हो गए। उसने कंबल ओढ़ा और एक कोने में बैठ गया।

उसके बाद उसने कहा—"आप लोगों को जो कुछ चाहिए वह लिखकर दीजिए।" सबने कुछ लिख-लिखकर दिया, स्वामी जी ने स्वयं भी उन फलों के नाम लिखकर दिए, जो उस प्रांत में पैदा ही नहीं होते थे, किंतु आश्चर्य कि उसने कंबल में से अंगूर के गुच्छे तथा संतरे इतनी अधिक मात्रा में निकालकर दिए कि उनका वजन उस मनुष्य के वजन से दोगुना था। वह फल सबने खाए भी। खाने योग्य थे भी। अंत में स्वामी जी के आग्रह पर उसने सौ-डेढ़ सौ गुलाब के फूल निकालकर दिए। प्रत्येक फूल बढ़िया खिला हुआ

और पंखड़ियों पर सबेरे के ओस बिंदु विद्यमान थे, न कोई खंडित फूल था, न मुरझाया और न टूटा।

इस घटना पर अपनी सम्मति व्यक्त करते हुए स्वामी विवेकानंद जी लिखते हैं—"लोग इसे जादू मानते हैं, चमत्कार कहते हैं, यह अवांछित है, ऐसी मान्यता है। किंतु मैं ऐसा नहीं मानता। यह सत्य का ही प्रदर्शन था। जो है ही नहीं—उसकी छाया कहाँ से आ सकती है ? इसलिए यह माया नहीं थी।"

"यह मन की अनंत शक्तियों का प्रमाण है, हम मन से जो चाहें उत्पन्न कर सकते हैं। मन के भीतर सारी सृष्टि की समृद्धि और संपत्ति है। शर्त यही है कि हम मन से काम लें। अनियंत्रित मन अपना भी बुरा करता है, संसार का भी। हैदराबाद का यह ब्राह्मण मन से तो काम लेता है, मगर यह नहीं जानता कि मन से काम ले रहा है, वह भी भ्रांति है, इसलिए वह चमत्कार की दुनिया तक ही सीमित रह गया। अपने अंदर ईश्वर को व्यक्त नहीं कर पाया।"

पाल ब्रंटन ने भारतवर्ष में इस तरह के चमत्कारों को ढूँढ-ढूँढ़कर देखा और बाद में इस गुप्त विद्या के प्रतिपादन में पुस्तक लिखी। पांडिचेरी के फ्रांसीसी न्यायाधीश लुई जंकालियट ने भी एक ऐसी ही पुस्तक लिखी है, जिसमें भारतवर्ष की इस पुरातन विद्या की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इस तरह की घटनाएँ दर्शाती हैं कि मनुष्य अपने आपके बारे में कितना कम जानता है और यह भी कि जैसा वह सोचता है, उससे अधिक बड़ी व समर्थ शक्तियाँ उसके भीतर बीज रूप में विद्यमान हैं। इन अर्थों में मनुष्य को सर्व-समर्थ ईश्वरीय सत्ता की प्रतिनिधि या उत्तराधिकारी संतान ही कहा जाना चाहिए, परंतु आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य आरंभ में क्षुद्र और अशक्त दुर्बल जीव ही था। धीरे-धीरे ही उसका विकास हुआ।

क्रमशः विकास करने की इस वैज्ञानिक मान्यता को विकासवाद कहा जाता है। इन दिनों जीव-विज्ञानी विकासवाद के सिद्धांत का बहुमत से समर्थन कर रहे हैं। यह मान्यता बहुचर्चित-बहुश्रुत होते-होते बहुमान्य भी हो गई है कि जीवन का आरंभ अविकसित स्तर पर हुआ और वह क्रमशः आगे बढ़ता चला आया। आजकल यही सिद्धांत विद्यालयों में पढ़ाया जाता है और समझाया जाता है कि आदमी की आदि सत्ता अभिनंदनीय नहीं है। उसका पूर्व इतिहास गौरवास्पद नहीं है। आज का मनुष्य अपने पूर्वजों से कहीं अधिक अच्छी स्थिति में है, यह मान्यता हमें अहंकारी ही नहीं बनाती, वरन् पूर्वजों के प्रति अश्रद्धा एवं उपहास के भाव भी पैदा करती है। ऐसी दशा में इतिहास का कोई मूल्य ही नहीं रह जाता। तब के विकसित लोगों के रचे हुए वेद, शास्त्र आज के विकसित लेखकों द्वारा लिए गए अश्लील, जासूसी और तिलस्मी उपन्यास से कहीं अधिक कला एवं कल्पना के आधार कहे जा सकते हैं। आधुनिक प्रमाण एवं तर्क तथा विवेकरहित पूर्वाग्रह और दुराग्रहयुक्त आधारहीन चिन्तन असत्य और सर्वनाशी सिद्धांतों की ही प्रतिष्ठा है।

यदि तथ्य, प्रमाण एवं तर्क का समुचित समावेश रहा होता, तो जो कुछ कहा जा रहा है, उसे सत्य की प्रतिष्ठा के नाम पर अपनाना ही समीचीन होता।

विकासवाद के सिद्धांत का एक अंश ही ग्राह्य हो सकता है। जैसे बालक का शरीर और मस्तिष्क अविकसित होता है, समयानुसार उसकी सर्वतोमुखी प्रगति होती है और युवावस्था में पहुँचने पर वह प्रौढ़, प्रगल्भ परिपक्व बन जाता है। इतने पर भी उसकी मूल चेतना में, शुक्राणु में ही वंश-परंपरा की आश्चर्यजनक संभावनाएँ विद्यमान मानी जाती हैं। गेहूँ के बीज से गेहूँ उत्पन्न होता है। आम की आकृति और स्वाद का पूरा ढाँचा उस गुठली में भरा रहता है, जिससे कि नया पौधा उगता है। इस वंशधर में अपने

पूर्वज के गुण ही विकसित होते पाये जायेंगे। विकास क्रम की यह परंपरा कहीं भी देखने में नहीं आती कि सरसों का बीज क्रमशः विकसित होते-होते कटहल जैसे फूल लगाने लगा हो। मूँग की बेल पर कद्दू जैसे स्वाद और आकार के फल लग सकना शायद कभी भी संभव न हो सकेगा।

● क्या यह भी विकास है ?

वस्तुतः परमात्मा ने अपने प्रत्येक रचना को पूर्ण बनाया है, किंतु आये दिन कई ऐसी घटनाएँ भी घटती रहती हैं, जो इस मान्यता को झुठलाती रहती हैं। यही नहीं, ये घटनाएँ अपनी विलक्षण विचित्रताओं और रहस्यमय विशेषताओं के कारण उस अज्ञात-अलौकिक और सर्व-समर्थ सत्ता की ओर संकेत करती है।

सन् १८५७ भारतवर्ष में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (गदर) के नाम से विख्यात है, यही वर्ष कैलीफोर्निया की नापाकाउंटी स्टेट में एक ऐसे आश्चर्य के लिए विख्यात है, जिसने देववाद की यथार्थता का एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत कर लाखों लोगों को विस्मित कर दिया।

२७ अगस्त सन् १८५७। कई दिन से बादल घुमड़ रहे थे, पर वर्षा नहीं हो रही थी और तब एकाएक बूँदें गिरनी प्रारंभ हुईं। वर्षा से बचाव के लिए लोग जल्दी-जल्दी घरों में छिपने लगे, तो भी कुछ लोग जो बाहर जंगल में काम कर रहे थे, वे जल्दी ही घर नहीं पहुँच सके। घर तो पहुँचे, पर देर से भीगते हुए पहुँचे।

बरसात का पानी सिर से पाँव तक बह रहा था, कुछ बूँदें एक चरवाहे के ओठों पर लगीं। पानी, क्या था—पूरा शर्बत, अब उसने अपनी हथेली आगे कर दी और पूरा चुल्लू पानी इकट्ठा कर पिया तो आश्चर्य में डूब गया, क्योंकि वह पानी नहीं वास्तव में शर्बत था। ठीक वैसा ही, जैसा कि चीनी घोलकर शर्बत बनाया जाता है।

एक चरवाहे को ही नहीं, कई किसानों, कुछ अध्यापकों और शहर के अनेक लोगों को भी एक साथ ही अनुभव हुआ कि आज जो पानी बरस रहा है, वह सामान्य वर्षा से बिल्कुल भिन्न है, अर्थात् पूरे नापाकाउंटी क्षेत्र में बरसे जल में भरी-पूरी मिठास थी। ऐसा नहीं कि कोई हलका मीठापन रहा हो।

बात की बात में चर्चा सारे क्षेत्र में फैल गई। जो जहाँ था, उसने वहीं वर्षा का जल पिया और पाया कि उस दिन की बरसात में मिश्री घोली हुई थी।

इस घटना को प्रकृतिगत रहस्य माना गया। कुछ लोगों ने इसके पीछे देववाद को भी कारक रूप में स्वीकार किया। अपवाद स्वरूप होने पर भी इन घटनाओं का कोई न कोई कारण तो होना ही चाहिए। कई बार ऐसी विलक्षण आकृति-प्रकृति के लोग और मनुष्येत्तर प्राणी भी मिल जाते हैं, जो क्रमशः विकास वाले सिद्धांत को चुनौती देते हैं।

मिशिगन (अमेरिका) में एक ऐसा व्यक्ति है, जो मुँह से साँस खींचकर आँखों से निकाल सकता है, इन सज्जन का नाम है एल्फ्रेड लागेवेन। इस तरह की अनुभूति उन्हें अपने आप तब हुई, जब एक दिन उन्होंने मुँह में हवा भरकर गाल फुलाए तो उन्हें अनायास ही ऐसा लगा कि वह हवा आँखों से निकल रही है। आँखों के आगे हाथ लगाकर देखा तो हवा की स्पष्ट अनुभूति हुई। इस बात को वहाँ उपस्थित अन्य लोगों ने भी अनुभव किया।

कुछ लोगों को लगा कि अल्फ्रेड किसी टेकनीक से हवा जैसी अनुभूति हाथों को करा देता होगा, तो वह मोमबत्ती जलाकर ले आए और जब अल्फ्रेड ने मुँह को पूरी तरह साँस से भरकर बंद कर लिया, तब उसके नथुने भी बंद करके मोमबत्ती आँखों के सामने ले जाई गई और कहा गया—'अब आप इसे आँख से फूँक मारकर बुझाइए।' अल्फ्रेड ने सचमुच आँख से फूँक मारी और उस जलती मोमबत्ती को भी बुझाकर दिखा दिया। उसकी यह

विलक्षणता इस बात की प्रमाण है कि मनुष्य शरीर भगवान् की बनाई हुई रहस्यपूर्ण विशेषताओं का प्रतीक है, यदि आंतरिक दृष्टि से खोज की जाए तो इस शरीर यंत्र से सैकड़ों ऐसे कार्य किए जा सकते हैं, स्थूल दृष्टि से जो विलक्षण चमत्कार ही जान पड़ते हों।

"स्टेंटर" नामक जीव को देखना चाहिए। वह मृत्यु के समय एक क्षण तूफान से पूर्व के वातावरण की भाँति अत्यंत शांत-सा प्रतीत होता है और दूसरे ही क्षण एक भयंकर विस्फोट के साथ अपने प्राण निकाल देता है। इस विस्फोट को सुनते हुए भय लगता है, मानों "स्टेंटर" मृत्यु के समय भावी जीवन की कल्पना से भयभीत हो उठा हो।

इंग्लैंड के विश्व विख्यात प्लीमथ बंदरगाह पर बने प्रसिद्ध प्रकाश स्तंभ एडिस्टोन के पीछे भी एक ऐसी ही विलक्षण घटना जुड़ी हुई है। योरोपियन भी जिसकी आश्चर्य के साथ चर्चा करते और यह मानते हैं कि ऐसी घटनाएँ किसी अतींद्रिय कारण का ही फल हो सकती हैं।

यह प्रकाश स्तंभ हेनरी विस्टनले नामक अंग्रेज शिल्पी ने बनाया था। इसे बनाने में उसने अपनी सारी आत्मा लगा दी थी। अपने निर्माण के प्रति उसका प्यार इसी बात से प्रकट होता है कि उसने इस प्रकाश स्तंभ का एक छोटा माडल भी बनाया और उसे अपने घर में ड्राइंग रूम में सजाकर रखा।

दिन बीतते गए। एक बार की बात है कि समुद्र में भयंकर तूफान आया। तूफान ने न केवल इस बंदरगाह को ध्वस्त कर दिया—वरन् इस प्रकाश स्तंभ को भी बर्बाद कर दिया। विस्टनले उस समय बंदरगाह से २०० मील दूर अपने घर पर था। इधर समुद्र में तूफान आया और प्रकाश स्तंभ गिरा—उधर घर में रखा वह माडल भी अपने आप जमीन पर गिरकर चकनाचूर हो गया और उसी समय अपनी चारपाई पर लेटे विस्टनले ने कहा—'अब जब न यह कलाकृति रही और न वह, तो मैं ही जीकर क्या करूँ ?

इतना कहते-कहते उसने भी अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। उस समय तो इन शब्दों का अर्थ वहाँ उपस्थित कोई भी व्यक्ति नहीं समझ पाया, पर पीछे जब सब बातें प्रकाश में आईं तो लोग आश्चर्यचकित रह गए कि, दो जड़ और एक चेतन—तीन आत्माओं का एक साथ विसर्जन क्यों हुआ और २०० मील दूर बैठे मिस्त्री विस्टनले को पूर्वाभास अपने आप कैसे हो गया ?

● विलक्षण चेतना की झाँकियाँ—

इन सब तथ्यों से यह तो प्रकट हो ही जाता है कि इस विश्व का सुव्यवस्थित संचालन करने वाली सत्ता सर्वव्यापी है और हममें हर एक उससे सतत जुड़ा रहता है। वह चैतन्य सत्ता ही हमारी चेतना का कारण एवं आधार है। उसी विराट् अनंत चेतना-समुद्र की बूँदें हैं—व्यष्टि-चेतना। पर इस तथ्य से आँखें मूँदकर मात्र जड़ प्रकृति को सृष्टि की संचालन मानने वाले—न तो अपनी ही चेतना की गहराइयों तक पहुँच पाते हैं न दूसरों की चेतना का अनुभव कर पाते हैं।

आत्म-सत्ता के संकेतों के प्रति उदासीन मनुष्य अपने को संभ्रांत-प्रगतिशील मानते हुए भी वस्तुतः आत्मतत्त्व से कितना अनभिज्ञ और आध्यात्मिक दृष्टि से कितना अपरिपक्व-अविकसित होता है, इसका प्रमाण है—यह एक घटना, जो पांडिचेरी के अरविंद आश्रम की संचालिका श्री यज्ञ शिखा माँ (श्री माँ) को लिखे गए एक पत्र के आधार पर लिखी जा रही है। यह पत्र मध्य प्रदेश के महान् राजनैतिक क्रांतिकारी काशीराम का है, जो उनके एक मित्र द्वारा श्री माँ को भेजा गया था। श्री काशीराम जी अमर शहीद भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि के साथियों में रहे हैं, कानपुर सूटिंग केस में उन्हें सात वर्ष की जेल हुई थी। गाड़ोदिया बैंक के डकैती केस में वे चंद्रशेखर के साथ रहे थे।

इस पत्र में अपने प्रिय पुत्र के निधन का सकरुण चित्रण करते हुए काशीराम ने आत्मा संबंधी भारतीय दर्शन को गंभीर आस्था के साथ स्वीकार किया है और लिखा है कि—"हम सांसारिक व्यापारों में इतने पदार्थवादी हो गए हैं कि आत्मा की आवाज को भी नहीं पहचान सकते। आत्मा हर क्षण हमें अपने संदेश और प्रेरणाएँ देकर हमारा मार्गदर्शन करना चाहती है, पर सांसारिक आसक्तियों में फँसे हुए साधारण मनुष्य उसकी उपेक्षा ही करते रहते हैं और मनुष्य शरीर जैसे अलभ्य अवसर को यों ही गँवाते रहते हैं।"

श्री काशीराम ने लिखा है—"सहदेव के जन्म के समय मेरे एक मित्र, जिन्होंने ज्योतिष का बहुत अध्ययन किया था, मेरे पास ही थे। उन्होंने भैया (जिस परिवार को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, उनके घर छोटे बच्चों को भैया के ही संबोधन से पुकारा जाता है) की जन्म तिथि के आधार पर बताया कि आपके घर कोई देवात्मा आई है। इसे तो किसी बड़े संपन्न घर में जन्म लेना चाहिए था, पता नहीं वह कैसे आपके घर आ गया ? फिर कुछ रुककर उन्होंने कहा—जून सन् १९५५ की किसी तारीख को आपका बच्चा नहीं रहेगा ? यदि कुछ उपाय कर लोगे, तो वह बचा भी रह सकता है, बचा रहा तो आपके जीवन में तीव्र परिवर्तन आएगा। सुख-संपत्ति का घाटा नहीं रहेगा।"

बातचीत के दौरान उन्होंने बताया कि—"ज्योतिषशास्त्र के अब ज्ञाता नहीं रहे, अब तो जहाँ-तहाँ उसका झूँठा व्यवसाय चल रहा है, पर यदि सचमुच भविष्य विद्या की साधना करे तो न केवल बालक के पूर्व जन्मों का इतिहास जाना जा सकता है, वरन् भविष्य के एक-एक दिन का इतिहास भी सिनेमा के पर्दे की तरह देखा जा सकता है।" उन्होंने नकली प्रचलित फलित ज्योतिष का बहुत खंडन किया था।

"मेरे पूछने पर उन्होंने बताया, पूर्व जन्मों की जो ईश्वर उपासक और देव वृत्ति की आत्माएँ हैं, वे यदि किसी प्रकार परमात्मा को नहीं पा पातीं तो उनका दूसरा जन्म श्री, कुल, यश, साधनसंपन्न परिवारों में होता है। यदि वे किसी साधारण परिवार में ही जन्म ले लें, तो "जिमि सुख संपत्ति बिनहिं बुलाए। धर्मशील पँह जाहिं सुहाए।।" के अनुसार साधन-संपत्तियाँ उसके पास अपने आप दौड़ी चली आती हैं। इसी आधार पर हमने कहा है कि यदि बच्चा ६ वर्ष की आयु के बाद जीवित रहा तो आपके घर किसी बात की कमी न रहेगी।"

उस समय की यह बात आई-गई हो गई।

आगे की घटना फिर प्रारंभ होती है—सहदेव बच्चा था, पर वह जीवन में एक बार भी असत्य नहीं बोला। उसने कभी पैसे तथा घर की किसी और की वस्तु नहीं उठायी। उसके मुँह से निकली हुई कोई भी बात असत्य नहीं होती थी। एक बार काशीराम के एक पड़ौसी का मुकदमा चल रहा था। जिस दिन उन्हें फैसला सुनाया जाना था, सबेरे-सबेरे वे घर आए और पूछा, "भैया ! बताओ मैं मुकदमा जीत जाऊँगा या नहीं।" भैया ने कहा—"तुम मुकदमा हार जाओगे और तुम्हें तीन साल की सजा होगी।" उन सज्जन ने इस मुकदमे में बड़ी लंबी रिश्वतें दी थीं और उन्हें छूट जाने का पक्का आश्वासन मिला था। इसीलिए बच्चे कितने संवेदनशील होते हैं, पर हम उसकी भावनाओं का आदर कहाँ करते हैं ? माता-पिताओं की उपेक्षा उन्हें गलत रास्तों में भटका देती है। उन्हें गुनहगार ठहराया जाता है, पर सारी भूल अभिभावकों की होती है, जो उन्हें स्नेह और मनोवैज्ञानिक ढंग से सिखाना, समझाना भी नहीं जानते।

रात बारह बजे बच्चे की नींद टूटी। उसने कई बार श्री काशीराम जी को पिताजी, पिताजी ! कहकर पुकारा—उस दिन दुर्भाग्य से पति-पत्नी दोनों ने भंग पी ली थी। देर तक नींद न टूटी। एक पड़ौसी ने आकर जगाया—बच्चा कब से चिल्ला रहा है

और आप ऐसे धुत्त सो रहे हैं। उस दिन श्री काशीराम जी ने पहली बार अनुभव किया—नशा—मनुष्य जीवन का कितना बड़ा पाप है ?

बच्चे ने बिना किसी प्रकार की शिकायत किए कहा—"पापाजी—मेरी गरदन दुःख रही है" यह कहकर उसने काशीराम जी का हाथ पकड़कर अपने दाहिनी गरदन पर रखकर वह स्थान बताया। श्री काशीराम जी चौंक पड़े—बच्चे का सारा शरीर गर्म तवे की भाँति जल रहा था। उन्होंने घबड़ाकर पत्नी को जगाया। दोनों उतरकर नीचे आए। पत्नी बच्चे को लेकर सो गई, काशीराम जी अलग जा सोए। नशे का अभिशाप—दोनों में से किसी को भी यह ध्यान नहीं रहा कि बच्चे को बुखार है, उसे डॉक्टर को दिखाना चाहिए, औषधि दिलानी चाहिए।

प्रातःकाल सहदेव की स्थिति बहुत बिगड़ी हुई मिली, तब श्री काशीराम जी डॉक्टर के लिए दौड़े। समय निकल जाता है, तब सिवाय हड़बड़ी के और क्या हो सकता है ? डॉक्टर आया, उसने देखकर बताया कि, स्थिति ठीक नहीं है, उसे अस्पताल ले जाना चाहिए।

नानी-नाना बुला लिए गए। बच्चा दिनभर तीव्र ज्वर में अचेत नानी की गोद में पड़ा रहा। काशीराम जी डॉक्टर के पास गए। डॉक्टर "अभी-अभी आया" कहकर अपने मरीजों में व्यस्त था, उसे पता था, काशीराम जी की स्थिति तंगी की है, वहाँ से दवाओं के पैसे मिलना कठिन है, इसलिए उसने शाम के सात बजा दिए और चला नहीं।

काशीराम जी डॉक्टर के पास खड़े थे, तो उन्हें ऐसा लगा जैसे सहदेव कह रहा हो—"पिताजी, अब तो लौट आओ। मैं अब हमेशा के लिए जा रहा हूँ।" आत्मा की आवाज, पर कितनी स्पष्ट और शक्तिशाली। श्री काशीराम जी ने कहा—"डॉक्टर साहब ! धन्यवाद ! अब आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं रही। सहदेव रहा नहीं।" यह कहकर वे घर की तरफ भागे और तब

पीछे-पीछे डॉक्टर साहब भी अपनी कार लेकर दौड़े, पर प्राण किसकी प्रतीक्षा करता है ? बच्चे का शरीर ठंडा पड़ चुका था, ओठ सुख गए थे। डॉक्टर ने जल्दी-जल्दी देखा और कह दिया—"बच्चे की मृत्यु हो गई है।" किसे दोष दिया जाए, ऐसे तो हजारों बच्चे रोज मरते रहते हैं ? डॉक्टर लौटा और अपने काम में लग गया।

जल्दी नाना जी को भी थी। जीवन और मृत्यु के क्षणों में भी मनुष्य उस काल की विलक्षण घटनाओं के बारे में एक क्षण भी विचार नहीं करता। संभव है—ऐसे प्रसंग देखकर ही धर्मराज युधिष्ठिर ने यक्ष के "संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है ?" प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिरम्।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमहाश्चार्यमतः परम्।।

अर्थात् एक-एक करके सारा संसार मृत्यु के मुख में समाता चला जा रहा है, पर पीछे रह जाने वालों की गतिविधियाँ ऐसी रहती हैं, मानों उन्हें मृत्यु तक जाना ही नहीं—हे यक्ष ! इससे बढ़कर संसार में और कोई दूसरा आश्चर्य नहीं हो सकता।

व्यवस्थापक नाना जी ही थे। बच्चे को ले जाकर जल्दी-जल्दी गड्ढा खोदकर दफना दिया गया। श्री काशीराम जी उसका अच्छी तरह मुँह भी नहीं देख पाए।

मित्र, परिचित और संबंधी आते और श्री काशीराम जी को सांत्वना दिलाते रहे। वह दिन ऐसे ही बीता। संध्या आई और चली गई। बत्तियाँ जल गईं। बच्चे की माँ की स्थिति अब भी बड़ी गंभीर थी, पर काशीराम जी के दुःख का पारावार ही न था। स्वतंत्रता आंदोलन का क्रांतिकारी, जो कभी गोली और बंदूक दागने और डकैती डालने जैसे कामों में भी नहीं घबराता था, पुत्र की ममता के आगे उसकी सारी दृढ़ता ढेर हो गई।

रात कोई आठ बजे होंगे। काशीराम जी चारपाई पर लेटे थे। बिजली का खंभा सामने ही था, बल्व जल गया था। उससे सड़क के उतने हिस्से में खूब प्रकाश फैल रहा था। तंत्रवस्य (हिप्नोटाइज्ड) मस्तिष्क की भाँति काशीराम जी को एकाएक ऐसा लगा—जैसे सहदेव की छाया बल्व के नीचे प्रकाश में खड़ी है। आकृति थोड़ा आगे बढ़ी और बोली—"पिताजी ! आपने मुझे जीवित गाड़ दिया। जल्दी करो, मुझे निकाल लो। मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है।" रुक-रुक कर बच्चे ने तीन बार यही शब्द कहे। बच्चे की आकृति सामने आते ही पिता का हृदय छलक पड़ा। वे चिल्लाए—भैया ! मेरे भैया ! और उनके इतना कहने पर ही उनकी धर्मपत्नी का ध्यान उनकी ओर गया। उन्होंने बताया, अभी भैया आया था और कह रहा था, मुझे जीवित गाड़ दिया गया है। मुझे फावड़ा तो लाओ, मैं अभी जाकर सहदेव को खोद लाता हूँ।

धर्मपत्नी ने कहा—तुम्हें यों ही वहम हो गया है, जब बच्चा बीमार था, तब दवा कराते नहीं बना, अब जब उसकी लाश गाड़ दी गई तो उसे उखाड़ने से क्या लाभ ? श्री काशीराम ढीले पड़ गए और फिर इन्हीं शोकपूर्ण विचारों में डूब गए।

हल्की-सी नींद लगी और भैया की आवाज फिर सुनाई दी—"पिताजी—मुझे जीवित गाड़ दिया गया है, मुझे निकाल लो, पिताजी मेरा दम घुट रहा है।" काशीराम जी की नींद टूट गई। फिर सोए तो फिर वही आवाज। रात भर बच्चे की आत्मा पिता के आस-पास घूमती, जगाती और संदेश देती रही, पर कुछ धर्मपत्नी के शब्द, कुछ अपना भी अविश्वास बेचारे लेटे के लेटे ही रहे। पर प्रातःकाल ४ बजे जब बच्चे को मरे २४ घंटे हो रहे थे, फिर जोर से बच्चे की आवाज सुनाई दी—"पिताजी, मुझे जीवित गाड़ दिया गया है, मुझे निकाल लो।"

श्री काशीराम जी की नींद टूट गई। वह भागे। पागलों की तरह बच्चे की कब्र के पास पहुँच गए। एक क्षीण-सी आवाज

आई—"पिताजी ! बहुत देर कर दी। मैं मर रहा हूँ, अब आने का क्या लाभ ?" काशीराम जी पागल हो उठे। हाथ में कोई वस्तु नहीं, किससे खोदते ? फिर घर को भागे। फावड़ा लेकर फिर उसी स्थान की ओर दौड़े, जहाँ बच्चा गड़ा था। अब तक घर के सब लोग भी जग चुके थे। सबने यही कहा कि काशीराम जी बच्चे की ममता में पागल हो गए हैं, यह किसी ने नहीं समझा कि आत्मा की भी कोई आवाज होती है, उसका भी कहीं कोई अस्तित्व होता है ?

काशीराम जी ने क़ब्र खोदकर बच्चे को निकाला, तो आश्चर्यचकित रह गए। बच्चे की देह बिल्कुल गर्म थी, लाश में किसी प्रकार की खराबी नहीं थी। साँस चलने का तो कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहा था, पर कनपटी की नसें अब भी फड़क रही थीं और उससे यह स्पष्ट होता था कि अभी भी उसके शरीर में जीवन शेष है। अब तक घर के बहुत-से लोग और दूसरे लोग भी जमा होने लगे थे। बहुत लोगों ने उसके फोटो लिए। कई लोग कई तरह की चर्चा कर रहे थे, पर यह किसी से न बना कि कोई किसी डॉक्टर को लाता।

बच्चे का शरीर उसकी नानी को देकर काशीराम जी कई डॉक्टरों के पास गए। पर जिसने भी यह चर्चा सुनी, उसी ने काशीराम जी को पागल कहकर टाल दिया। इसी बीच कोई एक तांत्रिक भी दौड़ा-दौड़ा वहाँ आया और बच्चे को देखकर चिल्लाया—तुम लोगों ने बच्चे को जीवित मार डाला—उसका इलाज भी नहीं करते बना। उसके इतना कहते-कहते एक बार बच्चे ने खून की उल्टी की और फिर सदा के लिए इस संसार से विदा हो गया। मिट्टी जहाँ से आई थी, उसी में मिल गई।

यह पत्र श्री माँ ने बहुत ध्यान से पढ़ा और फिर काशीराम जी के मित्र को, जिन्होंने उन तक यह पत्र पहुँचाया था—लिखा—"ओह ! उसने आत्मा की आवाज को नहीं पहचाना—(पिटी, ही डिडनाट लिसन टू दि इंट्यूशन)।" एक

काशीराम क्या, हम सब भी तो पागलों की-सी जिंदगी जीते हैं। बाहरी भौतिक संसार के सुख के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं, पर आत्मा तो उपेक्षित पड़ी है। हमें उसकी आवाज सुनने का अवकाश ही कहाँ ?

एक सुशिक्षित-सुसंस्कृत आदर्शनिष्ठ क्रांतिकारी का यह संस्मरण, आप्त चेतना की सूक्ष्म शक्ति और उसकी प्रचंड सामर्थ्य का प्रमाण है। इतनी प्रचंड शक्ति परिस्थिति या वातावरण पर निर्भर नहीं हो सकती। वह स्वयं ही अपना विकास करने और अपनी शक्ति का उचित उपयोग करने में समर्थ है, जो लोग इस शक्ति का उपयोग करने की कला जानते हैं, वे इसका कल्याणकारी प्रयोजनों के लिए उपयोग भी करते हैं।

एक अंग्रेज शिकारी डेविड लेजली ने अपने अफ्रीकी शिकार यात्राओं के विवरणों की एक पुस्तक लिखी है "जुलुओं के बीच"—उसमें एक घटना यह है कि उसके साथी हाथियों की शिकार के लिए घेराबंदी करते हुए कहीं-गायब हो गए और बहुत ढूँढ़ने पर भी उनका कहीं कुछ भी पता न चला। इस तलाश में एक 'जुलु' तांत्रिक की सहायता ली गई। उसने उन सभी साथियों की शक्लें, वस्तुएँ आदि का ब्यौरा बताते हुए, यह भी कहा कि वे इस समय अमुक स्थान पर हैं, बताए हुए स्थान पर, जाकर उन्हें खोज लिया गया।

घाना के भूतपूर्व राष्ट्रपति एन्क्रुमा सदैव एक तांत्रिक की सलाह लेते थे। कीनिया के प्रधानमंत्री जोमो केन्याटा का तांत्रिकों पर विश्वास रहा है। वे जब भी विदेश प्रवास पर जाते, अपने साथ एक तांत्रिक भी ले जाते रहे हैं।

मनुष्य शरीर की सामान्य विद्युत् शक्ति से दैनिक जीवन का क्रिया-कलाप चलता है, किंतु यह नहीं मान बैठना चाहिए कि मानवी ऊर्जा की मात्रा इतनी ही सीमित है। यदि वह किसी प्रकार बढ़ सके तो मनुष्य शरीर चलते-फिरते बिजली घर के रूप में परिणत

हो सकता है। इस शक्ति को योगीजन भले कार्यों में और दुष्ट प्रकृति के लोग दुष्प्रयोजनों में लगाते हैं। आग का भोजन बनाने और घर जलाने में कुछ भी प्रयोग हो सकता है। यही बात साधना द्वारा उत्पन्न हुई आत्म-शक्ति के संबंध में भी है।

फिजी द्वीप के निवासी एक त्यौहार मनाते हैं, उस दिन उन्हें आग पर चलना पड़ता है। इसे अभ्यास भी कहा जा सकता है और आत्मविश्वास की शक्ति भी, कि वे लोग दहकते आग के शोलों में घंटों नाचते रहते हैं, किंतु कभी ऐसा कोई अवसर नहीं आता कि उनके पैर जल जाते हों।

आयरन ड्यूक आफ वेलिंग्टन कंसास राज्य अमेरिका के जान डब्लू हार्टन ने पेट में न जाने कहाँ की आग पैदा कर ली थी कि नाश्ते में ४० पौंड तरबूजा खा लेने के बाद भी सोड़ा की बोतलें, टूटे शीशे, अंडों के छिलके और केले के अनगिनत छिलके चबा जाते थे। एक बार एक इंजीनियर द्वारा चुनौती दिए जाने पर उन्होंने भरपूर भोजन करने के बाद सीमेंट का पूरा कट्टा खा लिया और उसे इस स्वाद के साथ एक-एक चम्मच भक्षण किया जैसे छोटे बच्चे प्रेमपूर्वक शक्कर या मिठाई खाते हैं, उन्होंने यह भी कहा मैं कुछ और अभ्यास करूँ तो इतनी ही मात्रा में विष तक खाकर दिखा सकता हूँ।

❐ ❐

गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु ?

*

मनुष्य का विश्लेषण दो प्रकार से किया जाता है, धर्म उसे गिरा हुआ देवता कहता है और विज्ञान उसे 'उठा हुआ पशु' बताता है। देखना यह है कि दोनों प्रतिपादनों में यथार्थता किसके साथ है ?

आदम और हव्वा स्वर्ग में रहते थे। उन्होंने शैतान के बहकावे में आकर अभक्ष्य खाया और जमीन पर आ गिरे। उनके वंशज मनुष्य कहलाए। देवता और अवतारों का धरती पर उतरकर मनुष्य शरीर धारण करना और संतानोत्पादन में संलग्न होना, प्रायः इसी से मिलती-जुलती कथा-गाथाएँ समस्त धर्मों में प्रचलित हैं, जिनमें आदि मानव के अस्तित्व का आरंभ किस प्रकार हुआ, इस जिज्ञासा का समाधान किया गया है। यह मान्यताएँ बताती हैं कि मनुष्य गिरा हुआ देवता है। स्वर्ग लोक के देवता अपने इस गिरे हुए साथी की सहायता करने के लिए समय-समय पर अपने सहृदय सहायक का परिचय देते रहते हैं।

भौतिक विज्ञान की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार आदि जीव की उत्पत्ति पृथ्वी के रासायनिक पदार्थों के पानी तथा सूर्य की गर्मी के साथ समन्वय होने के कारण संभव हुई। तब वह पानी में तैरने वाला एक जल कीटक मात्र था। उसमें जड़-पदार्थों से अपने को स्वतंत्र करने की और आगे बढ़ने की तीन विशेषताएँ थीं—(१) भोजन करने और बढ़ने की शक्ति (२) घूमने-फिरने की शक्ति, (३) अपने समान दूसरे प्राणी को जन्म दे सकने योग्य प्रजनन शक्ति। इनसे भी बढ़कर थी—उसके 'अहम्' के साथ जुड़ी हुई इच्छा शक्ति।

चेतन जीव-प्रेरणा को प्राणि-जगत् के विकास का मूलभूत आधार माना गया। वस्तुतः यही जड़-चेतन की विभेद रेखा है।

अन्यथा जड़ में भी हलचल होती है। रासायनिक अणु अपने ढंग से विकास-वृद्धि और मरण-परिवर्तन का क्रम चलाते हैं। अंतर इतना ही होता है कि उनमें इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति के उपयोग, अभिवर्धन एवं नियंत्रण करने की स्वतंत्र चेतना नहीं होती। प्रकृति-प्रेरणा के वे खिलौने मात्र होते हैं। चेतन जीव में विभिन्न हलचलें तो होती ही हैं। उसमें प्रकृति-प्रेरणाओं के अनुरूप अथवा प्रतिकूल चलने का स्वतंत्र संकल्प-बल भी होता है। चेतन इसी का नाम है। जीव सत्ता का उद्‌गम इस चित्तशक्ति को कहा जा सकता है।

इस संसार में जीव कैसे उत्पन्न हुआ और उसका विकास किस रूप में हुआ ? इस संदर्भ में कितनी ही मान्यताएँ प्रचलित हैं। एक कथन यह है कि पृथ्वी में जब उष्ण गैस मात्र थी, तब उसने सूर्य की परिक्रमा करते हुए जीवन तत्त्व का उद्‌भव किया था। ध्रुवों की अंतिम सीमा को छोड़कर उसकी ऊपरी परत के नीचे यह जीवन जमा होता गया और जब जल तथा ताप का संतुलन हुआ, तो वह जीवन नन्हें-नन्हें कृमि-कीटकों के रूप में विकसित होने लगा। उसी का क्रमिक विकास वर्तमान प्राणियों के स्तर तक होता चला आया है। अभी भी विषुवत् वृत्त के समीपवर्ती उष्ण प्रदेशों में जीवों की बहुलता है। इसे सूर्य और धरती की समागम स्थली कहा जाता है।

प्रो० जे० वी० एस० हाल्डेन ने अल्ट्रा वायलेट किरणों के विकिरण द्वारा उच्च अणु भार वाले प्रांगारिक यौगिकों का संश्लेषण होना जीवन का प्रारंभिक कारण माना है। सर आलिवर लाज का कथन है कि—ईथर तत्त्व के साथ जीवन का अनंत स्पंदन अनादि काल से है। उसका आरंभ काल वह है, जब से जीवधारियों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता के रूप में उसकी अनुभूति की। जुलियस हक्सले का जड़ के विकास से चेतन की उत्पत्ति सिद्ध करने का प्रयास उपहासास्पद है। चेतना की सत्ता इस सृष्टि में अनादि काल

से विद्यमान है। जड़ को वर्तमान रूप तक घसीट लाने का श्रेय उस चेतना को ही दिया जाना चाहिए।

नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो० हेनरी वर्गसन ने अपने ग्रंथ 'क्रिएटिव एवोल्यूशन' में लिखा है। जीवन एक प्रचंड शक्ति है, जिसने आरंभिक ऊबड़-खाबड़ पदार्थ संपदा को एक व्यवस्थित और उपयोगी स्तर तक पहुँचाने का अथक प्रयत्न किया है। जार्ज बर्नार्ड शा ने अपनी पुस्तक 'मैन एंड सुपर मैन' में जीवन तत्त्व को लाइफ फोर्स के रूप में प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि—जीवन सत्ता को प्रकृति की समस्त शक्तियों में सर्वोपरि स्तर की स्वतंत्र कर्तृत्वसंपन्न सामर्थ्य कहा जा सकता है। नैपोलियन की बात लगती तो उपहासास्पद है, पर तथ्य उसमें भी है। वह कहता था—जीव का जन्म कीचड़ से हुआ है। कमल जैसा सुंदर पुष्प भी तो कीचड़ में ही जन्मता है। जल, मिट्टी और ऊष्मा के संयोग से जीव की उत्पत्ति मानने वाले प्रकारांतर से नैपोलियन की बात को ही पुष्ट करते हैं। क्या सचमुच ही हमारी आदि जन्मदात्री कीचड़ है ? क्या हम कीचड़ में सने हुए जन्मे और अभी तक उस कीचड़ से उबर नहीं पाए हैं ? यह एक विचित्र पहेली है, दार्शनिकों के लिए भी और भौतिक विज्ञानियों के लिए भी।

कीचड़ में से कीड़ा—कीड़े से मछली, मेंढक, सरीसृप, पक्षी और स्तनपायी जीवों का उद्भव—कैसा है—यह विचित्र संयोग ? जिसे न स्वीकार करते बनता है और न अस्वीकार करते। प्रथम स्तनधारी 'मैमल' ही क्या हमारा वंश पूर्वज है ? स्पीसीज वंश के स्तनपायी वनमानुष के रूप में हम विकसित हुए और पिछली टाँगों के सहारे खड़ा होना, सीधे चलना सीखा ! दो हाथों को पैरों के प्रयोजन से मुक्त करके, उन्हें विविध कर्म कर सकने योग्य बनाया। यह इतनी बड़ी जीवन क्रांति उन दिनों न जाने कितने चक्रों को पार करते हुए संभव हुई होगी ? इस खड़े होने की प्रक्रिया ने

वनमानुष और गृह मानुष के बीच बनावट का अंतर किया है, ऐसा शरीरशास्त्री मानते हैं।

डार्विन ने अपनी पुस्तक 'ओरिजिन ऑफ स्पीसीज' में उन पुरानी मान्यताओं को झुठलाया है, जिनमें यह कहा जाता रहा है कि प्रत्येक प्राणी अपने वर्तमान स्वरूप में ही अवतरित हुआ है। उन्होंने जीव के क्रमिक विकास को अपने प्रख्यात 'विकासवाद' दर्शन में अनेकों कारण और प्रमाण प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया है। मनुष्यों का पूर्वज वे होमोसैपियन ज़ाति के नर-वानर को मानते हैं। एप, गुरिल्ला, चिंपांजी, ओरंगउटान, गिब्बन आदि सब उसी आदि नर-वानर के वंशज हैं। उनके गोत्र भी अलग-अलग हैं।

मनुष्य का बाप बंदर था, यह बात गले न उतरने पर एक बार आक्सफोर्ड के लार्ड विशप सेम्युअल विल्वर फोर्स से जीव विज्ञानी टामस हक्सले ने व्यंग्यपूर्वक पूछा—'वनमानुष, आप माता के पक्ष में हैं या पिता के पक्ष में ?' इस पर हक्सले ने उत्तर दिया—'मुझे इस बात की लज्जा नहीं कि अपने बाबा या दादी वनमानुष थे। मुझे लज्जा उन पर आती है, जो अहम्मन्यता के कारण सच्चाई को पददलित करने के लिए तुले हुए हैं।' उन दिनों सचमुच ही यह एक विचित्र प्रतिपादन समझा गया था कि प्राणियों ने क्रमिक विकास किया है और मनुष्य बंदर की औलाद है। धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्रों में इस प्रतिपादन का प्रबल विरोध हुआ था। सन् १८७० में प्रशिया (जर्मनी) की सरकार ने आदेश निकालकर प्रतिबंध लगा दिया था कि—'विकासवाद' की बात किसी शिक्षा में, संस्था में न पढ़ाया जाए। टिनेसी (अमेरिका) में तो एक अध्यापक पर यह मुकदमा भी चला था, क्योंकि उसने छात्रों को विकासवाद के सिद्धांत पढ़ाए।

मनुष्य और वानर की शरीर रचना में अद्‌भुत समानता है। इतना ही नहीं, मानसिक स्तर पर भी वे दोनों बहुत कुछ मिलते हैं। शांति, चिंता, हँसी, रुदन, क्रोध, उत्तेजना, विरक्ति जैसी कितनी ही

संवेदनाएँ ऐसी हैं, जो मनुष्य के अतिरिक्त केवल वानरों में ही पाई जाती हैं। उनमें पारस्परिक सहयोग, स्नेह, वात्सल्य जैसी प्रवृत्तियाँ भी अन्य जीवों की तुलना में कहीं अधिक विकसित और स्थिर हैं।

जीव विज्ञानी मनुष्य को पंक-प्रजनन, कृमि-कीटक का विकास एवं बंदर की औलाद मानते हैं। क्या उनका प्रतिपादन मिथ्या है ? दुष्प्रवृत्तियों में उसका रुझान और उत्साह देखते हुए लगता है, संभवतः यही ठीक है कि मूलतः मानव प्राणी नर-पशु मात्र है। अन्यथा विवेकवान् और दूरदर्शी होते हुए भी ऐसी गतिविधियाँ क्यों अपनाता, जो उसके स्वयं के लिए और समस्त समाज के लिए अहितकर ही सिद्ध होती हैं ?

दर्शनशास्त्री मनुष्य को गिरा हुआ देवता मानते हैं। यह निरर्थकता है ? नहीं, यदि ऐसा न होता तो उसके अंतःकरण में ऊँचा उठने और श्रेष्ठ सिद्ध होने के लिए सत्कर्म करने की ललक क्यों पाई जाती ? आदर्शवादिता की, उत्कृष्टता की उमंगों का उठना और भौतिक लोभ-लिप्सा को छोड़कर परमार्थ प्रयोजनों के लिए त्याग-बलिदान का साहस जुटाना, अकारण नहीं हो सकता। परोक्ष के लिए प्रत्यक्ष की हानि सहने की उमंगें उठना मानवी अंतरात्मा की अपनी विशेषता है। यदि वह आदि काल में देव न रहा होता तो रह-रहकर वे दिव्य आकांक्षाएँ उसे क्यों बेचैन किए रहती हैं ? देवोपम जीवन जीने के लिए क्यों उसे कोई निरंतर व्यथित करता रहता है ?

फिर दोनों में से कौन गलत है ? हम आदि में नर-पशु थे या नर-नारायण ? गहराई से विचार करने पर प्रतीत होता है कि शारीरिक दृष्टि से मनुष्य ने नीचे से ऊपर की ओर प्रगति की है और आत्मिक दृष्टि से ऊपर से नीचे गिरा है। इन दिनों वह अधर में लटक रहा है। असमंजस के साथ वह एक चौराहे पर खड़ा है और सोचता है कि नर-वानर, नर-पशु, नर-कीटक बनने के लिए उसे वापिस लौटना चाहिए अथवा नर-देव बनने की दिशा में अपने

चरण आगे बढ़ाना चाहिए। आत्म-पक्ष कहता है, तुम देव थे, देवत्व की ओर आगे बढ़ो। देह-पक्ष कहता है, कृमि-कीटकों का जीवन अधिक स्वच्छंद और निरापद है। उसी मूल उद्गम की ओर लौटकर चैन की वंशी बजानी चाहिए।

मनुष्य के उद्भव, विकास और वर्तमान स्थिति के संबंध में आनुवंशिक विज्ञान द्वारा भी कर्तव्य सिद्धांत प्रतिपादित किए जाते रहे हैं।

● आनुवंशिकता या इच्छाशक्ति—

आनुवंशिकी-विज्ञान के अंतर्गत पिछले दिनों यह सिद्ध किया जाता रहा है कि प्राणी अपने पूर्वजों की प्रतिकृति होते हैं। माता-पिता के डिंब-कीट और शुक्र-कीट मिलजुल कर भ्रूण-कलल में परिणत होते हैं और शरीर बनना आरंभ हो जाता है। उस शरीर में जो मनः चेतना रहती है, उसका स्तर भी पूर्वजों की मनः स्थिति की भाँति ही उत्तराधिकार में मिलता है। शरीर की संरचना और मानसिक बनावट के लिए बहुत हद तक पूर्वजों के उन जीवाणुओं को ही जिम्मेदार ठहराया गया है, जो परंपरा के रूप में वंशधरों में उतरते चले जाते हैं।

इस प्रतिपादन से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्ति अपने आप में कुछ बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। पूर्वजों के ढाँचे में ढला हुआ एक खिलौना मात्र है। यदि संतान को सुयोग्य सुविकसित बनाना हो, तो वह कार्य पीढ़ियों पहले आरंभ किया जाना चाहिए। अन्यथा साँचे में ढले हुए इस खिलौने में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन न हो सकेगा।

आनुवंशिकी का प्रतिपादन जहाँ तक मानव-प्राणी का संबंध है, बहुत ही अपूर्ण और अवास्तविक है। पशु-पक्षियों में एक हद तक यह बात सही भी हो सकती है, पर मनुष्य के लिए यह कहना अनुचित है कि वह पूर्वजों के साँचे में ढला हुआ एक उपकरण मात्र

है। यह मानवी इच्छा शक्ति, विवेक-बुद्धि, स्वतंत्र-चेतना और आत्मनिर्भरता को झुठलाना है। समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री और मनोविज्ञानवेत्ता वातावरण एवं परिस्थितियों के उत्थान-पतन का कारण बताते रहे हैं। आत्मवेत्ताओं ने एक स्वर से सदा यही कहा है—मनुष्य की अंतः चेतना स्वनिर्मित है। यह वंश परंपरा से नहीं, संचित संस्कारों और प्रस्तुत प्रयत्नों के आधार पर विकसित होती है। इच्छा-शक्ति और संकल्प-शक्ति के आधार पर अपने मानसिक ढाँचे में कोई चाहे तो आमूलचूल परिवर्तन कर सकता है।

आनुवंशिकी की मान्यताएँ एक हद तक ही सही ठहराई जा सकती हैं। चमड़ी का रंग, चेहरा, आकृति अवयव आदि पूर्वजों की बनावट के अनुरूप हो सकते हैं, पर गुण, कर्म, स्वभाव भी पूर्वजों जैसे ही हों, यह आवश्यक नहीं। यदि ऐसा हो रहा होता तो किसी कुल में सभी अच्छे और किसी कुल में सभी बुरे उत्पन्न होते। रुग्णता, स्वस्थता, बुद्धिमत्ता, सज्जनता, दुष्टता, कुशलता, अस्त-व्यस्तता भी परंपरागत होती, तो प्रगतिशील वर्ग के परिवार के सभी सदस्य सुविकसित होते और पिछड़े लोगों का स्तर सदा के लिए गया-गुजरा ही बना रहता; तब उत्थान-पतन के लिए किए गए प्रयत्नों की भी कुछ सार्थकता न होती। वातावरण का भी कोई प्रभाव न पड़ता, पर ऐसी स्थिति है नहीं। पूर्वजों की स्थिति से सर्वथा भिन्न स्तर की संतानों के अगणित उदाहरण पग-पग पर सर्वत्र बिखरे हुए देखे जा सकते हैं। इससे मनुष्य की स्वतंत्र चेतना और इच्छा-शक्ति की प्रबलता का लक्ष्य ही स्पष्ट रूप से सामने आता है।

मद्यप मनुष्यों की संतान क्या जन्म-जात रूप से इस लत से ग्रसित होती है ? इस खोज-बीन में पाया गया कि ऐसी कोई बात नहीं है, वरन् उलटा यह हुआ कि बच्चों ने बाप को मद्यपान के कारण अपनी बर्बादी करते देखा, तो वे उसके विरुद्ध हो गए और

उन्होंने न केवल मद्यपान से अपने को अछूता रखा, वरन् दूसरों को भी उसे अपनाने से रोका।

मनुष्यों में गुण सूत्रों के हेर-फेर से जो परिणाम सामने आए हैं, उससे स्पष्ट है कि बिगाड़ने में अधिक और बनाने में कम सफलता मिली है। विकलांग और पैतृक रोगों से ग्रसित संतान उत्पन्न करने में आशाजनक सफलता मिली है, क्योंकि विषाक्त मादकता से भरे रसायन सदा अपना त्वरित परिणाम दिखाते हैं। यह गति विकासोन्मुख प्रयत्नों की नहीं होती। नीलाथोथा खाने से उलटी तुरंत हो सकती है, पर पाचन-शक्ति सुधार देने के प्रयोग उतने सफल नहीं होते। देव से असुर की शक्ति को अधिक मानने का यही आधार है। मनुष्यों में मनचाही संतान उत्पन्न करने का प्रयोग सिर्फ इतनी मात्रा में कुछ अधिक सफल हुआ है कि रंग-रूप और गठन की दृष्टि से जनक-जननी का सादृश्य दृष्टिगोचर हो सके। काया की आंतरिक दृढ़ता, बौद्धिक तीक्ष्णता एवं भावनात्मक उत्कृष्टता उत्पन्न करने में वैज्ञानिक प्रयोगों का उत्साहवर्धक परिणाम नहीं निकला है।

गुण सूत्रों को बदलने में इन दिनों विद्युत्-ऊर्जा एवं रासायनिक हेर-फेर के साधन जुटाए जा रहे हैं, पर वे यह भूल जाते हैं कि यह बाहरी थोप-थाप स्थिर न रह सकेगी—उससे क्षणिक-चमत्कार भले ही देखा जा सके। शरीर के प्रत्येक अवयव को मस्तिष्क प्रभावित करता है और मस्तिष्क का सूत्र-संचालन इच्छाशक्ति के हाथ में रहता है। अस्तु शारीरिक, मानसिक समस्त परिवर्तनों का तात्त्विक आधार इस इच्छा-शक्ति को ही मानना पड़ेगा। गुण-सूत्रों पर भी इसी ऊर्जा का प्रभाव पड़ता है और इसी माध्यम से वह परिवर्तन किए जा सकते हैं, जो मनचाही पीढ़ियाँ उत्पन्न करने के लिए वैज्ञानिकों को अभीष्ट हैं।

अभीष्ट स्तर की पीढ़ियाँ क्या रासायनिक हेर-फेर अथवा विद्युतीय प्रयोग उपकरणों द्वारा प्रयोगशालाओं में विनिर्मित हो

सकती है ? यह एक जटिल प्रश्न है। यदि ऐसा हो सका, तो यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य इच्छा-शक्ति का धनी नहीं, वरन् रासायनिक पदार्थों की परावलंबी प्रतिक्रिया मात्र है। यदि यह सिद्ध हो सका तो इसे मनोबल और आत्मबल की गरिमा समाप्त कर देने वाली दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही कहा जायेगा, पर ऐसा हो सकना संभव दिखाई नहीं पड़ता—भले ही उसके लिए एड़ी-चोटी का प्रयत्न कितने ही किए जाते रहें ?

शरीर के विभिन्न अंगों पर दबाव डाले जाते रहे हैं, पर प्राणी की मूल इच्छा ने उस दबाब को आवश्यक नहीं समझा, तो उस तरह के परिवर्तन नहीं हो सके। चीन में शताब्दियों तक स्त्रियों के पैर छोटे होना, सौंदर्य का चिह्न माना गया, इसके लिए उन्हें कड़े जूते पहनाए जाते थे। उससे पैर छोटे बनाने में सफलता मिली। पर वंश-परंपरा की दृष्टि से वैसा कुछ भी नहीं हुआ। हर नई लड़की के पैर पूरे अनुपात से ही होते थे।

प्राणियों के क्रमिक-विकास में इच्छा-शक्ति का ही प्रधान स्थान रहा है। मनुष्य तो मनोबल का धनी है, उसकी बात जाने भी दें और अन्य प्राणधारियों पर दृष्टिपात करें, तो प्रतीत होगा कि उनकी वंश-परंपरा में बहुमुखी परिवर्तन होता रहा है। इसका कारण सामयिक परिस्थितियों का चेतना पर पड़ने वाला दबाव ही प्रधान कारण रहा है। असुविधाओं को हटाने और सुविधाएँ बढ़ाने की आंतरिक आकांक्षा ने प्राणियों की शारीरिक स्थिति और आकृति में ही नहीं प्रकृति में भी भारी हेर-फेर प्रस्तुत किया है। जीव-विज्ञानी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं।

यदि पूर्वजों के गुण लेकर ही संतानें उत्पन्न होने वाली बात को सही माना जाए तो जीवों की आकृति-प्रकृति में परिवर्तन कैसे संभव हुआ ? उस स्थिति में तो पीढ़ियों का स्तर एक ही प्रकार का चलता रहना चाहिए था।

लेमार्क ने प्राणियों का स्तर बदलने में वातावरण को, परिस्थितियों को श्रेय दिया है। वे कहते हैं—इच्छा-शक्ति इन्हीं दबावों के कारण उभरती-उतरती है। सुविधा-संपन्न परिस्थितियों के प्राणियों के ऊपर किसी प्रकार का दबाव नहीं रहता। अतएव उनका शरीर ही नहीं, बुद्धि-कौशल भी ठप्प पड़ता जाता है। अमीरी के वैभव में पले हुए लोग अक्सर छुई-मुई बने रह जाते हैं और उनका चरखा बिखेर देने के लिए एक छोटा-सा आघात ही पर्याप्त होता है।

लेमार्क ने नए किस्म के अनेक जीवधारियों की उत्पत्ति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए कहा है कि बाहर से मौलिक जीव दीखने पर भी—वस्तुतः किसी ऐसे पूर्व प्राणी के ही वंशज होते हैं, जिन्हें परिस्थितियों के दबाव से अपने परंपरागत ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन करना पड़ा।

जीवों के विकास-इतिहास के पन्ने-पन्ने पर यह प्रमाण भरे पड़े हैं कि प्राणियों के अंग-प्रत्यंग निष्क्रियता के आधार पर कुंठित हुए हैं और सक्रियता ने उन्हें विकसित किया है। प्रवृत्ति, प्रयोजन और चेष्टाओं का मूल इच्छाशक्ति ही है। असल में यह इच्छाशक्ति ही प्राणिसत्ता में विकास, अवसाद उत्पन्न करती है। रासायनिक पदार्थों और गुण-सूत्रों की वंश-परंपरा विज्ञान में कायिक क्षमता को एक अंश तक प्रभावित करने वाला आधार भर माना जाना चाहिए। आधुनिक विज्ञान-वेत्ता मौलिक-भूल यह कर रहे हैं कि मानवी-सत्ता को उन्होंने रासायनिक प्रतिक्रिया मात्र समझा है और उसका विकास करने के लिए जनक-जननी को, उनके जनन-रसों को अत्यधिक महत्त्व दे रहे हैं। इस एकांगी आधार को लेकर मनचाही आकृति-प्रकृति की पीढ़ियाँ वे कदाचित् ही पैदा कर सकें।

वैज्ञानिक बीजमन ने चूहों और चुहियों की लगातार बीस पीढ़ियाँ तक पूछें काटीं और देखा कि क्या इसके फलस्वरूप बिना पूँछ वाले चूहे पैदा किए जा सकते हैं ? उन्हें अपने प्रयोग में सर्वथा असफल होना पड़ा। बिना पूँछ के माँ-बाप भी पूँछ वाले बच्चे ही

जनते चले गए। इससे यह निष्कर्ष निकला कि मात्र शारीरिक हेर-फेर से वंशानुक्रम नहीं बदला जा सकता। इसके लिए प्राणी की अपनी रुचि एवं इच्छा का समावेश होना नितांत आवश्यक है।

हर्बर्ट स्पेन्सर ने अपनी खोजों में ऐसे कितने ही प्राणियों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिन्होंने शरीर के किसी अवयव को निष्क्रिय रखा तो वह क्षीण होता चला गया और लुप्त भी हो गया। इसके विपरीत ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं, जिनमें "आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है" वाले सिद्धांत को सही सिद्ध करते हुए अपने शरीर में कई तरह के नए पुर्जे विकसित किए, पुरानों को आश्चर्यजनक स्तर तक परिष्कृत किया।

समुद्र-तट की गहराई में रहने वाली मछलियों को प्रकाश से वंचित रहना पड़ता है। अतएव उनकी आँखों का चिह्न रहते हुए भी उनमें रोशनी नहीं होती है। आँख वाले अंधों में उनकी गणना की जा सकती है। अँधेरी गुफाओं में जन्मने और पलने वाले थलचरों का भी यही हाल होता है। उनकी आँखें ऐसी होती हैं, जो अंधेरे में ही कुछ काम कर सकें। प्रकाश में तो वे बेतरह चौंधिया जाती हैं और निकम्मी साबित होती हैं।

समर्थ का चुनाव मात्र शारीरिक बलिष्ठता पर निर्भर नहीं है, वरन् सच पूछा जाए तो उनकी मनः स्थिति की ही परख इस कसौटी पर होती है। पशुवर्ग और सरीसृप वर्ग के विशालकाय प्राणी आदिम काल में थे। उनकी शरीरगत क्षमता अद्‌भुत थी, फिर भी वे मंद-बुद्धि, अदूरदर्शिता, आलस जैसी कमियों के कारण दुर्बल संज्ञा वाले ही सिद्ध हुए और अपना अस्तित्त्व खो बैठे, जबकि उसी समय में छोटी काया वाले प्राणी अपने मनोबल के कारण न केवल अपनी सत्ता सँभालते रहे, वरन् क्रमशः विकासोन्मुख भी होते चले गए।

जीवों के विकास क्रम का एक महत्त्वपूर्ण आधार यह है कि उन्हें परिस्थितियों से जूझना पड़ा—अवरोध के सामने टिके रहने

के लिए अपने शरीर में तथा स्वभाव में अंतर करना पड़ा। यह परिवर्तन किसी रासायनिक हेर-फेर के कारण नहीं, विशुद्ध रूप से इच्छा-शक्ति की प्रवाह-धारा बदल जाने से ही संभव हुआ है। जीवन संग्राम में जूझने की पुरुषार्थ-परायणता का उपहार ही अल्प-प्राण जीवों को महाप्राण स्तर का बन सकने के रूप में मिला है। जिन्होंने विपत्ति से लड़ने की हिम्मत छोड़ दी और हताश होकर पैर पसार बैठे, उन्हें प्रकृति ने कूड़े-कचरे की तरह बुहारकर घूरे पर पटक दिया। किसान और माली भी तो अपने खेत-बाग में अनुपयोगी खरपतवार की ऐसी ही उखाड़-पछाड़ करते रहते हैं। विकास की उपलब्धि पूर्णतया जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के फलस्वरूप ही मिलती है और इस संघर्षशीलता का पूरा आधार साहसी एवं पुरुषार्थी मनोभूमि के साथ जुड़ता रहता है।

आनुवंशिकी विज्ञान की अन्यान्य शोधें कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, पर यह प्रतिपादन तथ्य व तर्क किसी भी कसौटी पर स्वीकार्य नहीं हो सकता कि प्राणियों का स्तर पूर्वजों के परंपरागत गुण सूत्रों पर निर्भर करता है। विशेषतः मनुष्य का स्तर तो परंपरागत सूत्रों पर किसी भी प्रकार पूरी तरह निर्भर नहीं करता है। परमात्मा ने मनुष्य में बीज रूप से वे सारी विशेषताएँ भर दी हैं, जिनके द्वारा इच्छाशक्ति की प्रचंड समर्थता के आधार पर शारीरिक, मानसिक और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया संपन्न कर ले। इन संभावनाओं को मान्यता देने के उपरांत ही वंशगत विशेषताओं की चर्चा की जाए, यही उचित है।

❐❐

'अमीबा' से नहीं, मनुष्य ईश्वर की इच्छा से बना है

*

भगवान् मनु ने कहा है—

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानसिसृक्षया।

—मनु. १। ७४-७५

सृष्टि के आरंभ में परमात्मा ने अपनी इच्छाशक्ति से मन (जीवों) को उत्पन्न किया।

सृष्टि की हलचल की ओर ध्यान जमाकर देखें, तो यह सत्य ही प्रतीत होगा कि इच्छाओं के कारण ही लोग या जीव क्रियाशील हैं, यह इच्छाएँ अनेक भागों में बँटी हुई हैं—(१) दीर्घ-जीवन की इच्छा, (२) कामेच्छा, (३) धन की इच्छा, (४) मान की इच्छा, (५) ज्ञान की इच्छा, (६) न्याय की इच्छा और (७) अमरत्व या आनंद प्राप्ति की चिर तृप्ति या मोक्ष। इन सात जीवनधाराओं में ही संसार का अविरल प्रवाह चलता आ रहा है। इन्हीं की खटपट, दौड़-धूप ऊहापोह में दुनिया भर की हलचल मची हुई है, इच्छाएँ न हों, तो संसार में कुछ भी न रहे।

इन इच्छाओं की शक्ति से ही सूर्य, अग्नि और आकाश की रचना हुई है। देखने और सुनने में यह बात कुछ अटपटी-सी लगती है, किंतु वस्तुस्थिति यह है कि जब हम शोक, क्रोध, काम या प्रेम आदि किसी भी स्थिति में होते हैं, तो शारीरिक परमाणुओं में अपनी-अपनी विशेषता वाली गति उत्पन्न होती है। परमाणु जो एक ही पदार्थ या चेतना की अविभाज्य स्थिति में होते हैं, भिन्न-भिन्न प्रकार से स्पंदित होते रहते हैं, इससे स्पष्ट है कि शरीर की हलचल इच्छाओं पर आधारित है।

अभी यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या मूल चेतना में अपने आप इच्छाएँ व्यक्त करने की शक्ति है ? इस बात को वर्तमान वैज्ञानिक उपलब्धियों से भली प्रकार सिद्ध किया जा सकता है। जिन्होंने विज्ञान का थोड़ा भी अध्ययन किया होगा, उन्हें ज्ञात होगा कि जड़ पदार्थ (मैटर) को शक्ति (एनर्जी) अथवा विद्युत् (इलेक्ट्रिसिटी) में बदल दिया जाता है। इस बात का पता पदार्थ की अति सूक्ष्म अवस्था में पहुँचकर लगा। हम जानते हैं कि पदार्थ परमाणुओं से बने हैं। परमाणु भी अंतिम स्थिति न होकर उनमें भी 'इलेक्ट्रॉन' तथा 'प्रोट्रॉन' आवेश होते हैं। प्रोट्रॉन परमाणु का केंद्र है और इलेक्ट्रॉन उस केंद्र के चारों ओर घूमते रहते हैं। यह दोनों अंश छोटे-छोटे टुकड़े नहीं है, वरन् यह धन और ऋण आवेश (इलेक्ट्रिसिटी) हैं, दोनों की सम्मिलित प्रक्रिया का नाम ही परमाणु है। इस दृष्टि से देखें तो यह पता चलेगा कि—संसार में जड़ कुछ है ही नहीं। जगत् का मूल तत्त्व विद्युत् है और उसी के प्रकंपन (वाइब्रेशन्स) द्वारा स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों का अनुभव होता है। छोटे-छोटे पौधों, वृक्ष एवं वनस्पति से लेकर पहाड़, समुद्र, पशु-पक्षी, रंग-रूप और अग्नि, वायु, शीत, ग्रीष्म आदि सब विद्युत् चेतना के ही कार्य हैं। एक ही शक्ति सब पदार्थों के मूल में हैं। सृष्टि के आविर्भाव से पूर्व एक ही तत्त्व था, यह बात इतने से ही साबित हो जाती है।

कृषि विज्ञान के बहुत-से पंडितों ने पदार्थों के अंदर पाए जाने वाले गुण सूत्रों (क्रोमोसोम्स) में परिवर्तन करके, उनकी नस्लों में भारी परिवर्तन करने में सफलता पाई है। दिल्ली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० जी० आर० राव ने मकोय के गुण सूत्रों पर 'कोल्चीसाइन' क्रिया के द्वारा प्रभाव डालकर, उसे टमाटर की-सी नस्ल में परिवर्तित कर दिया। शक्कर से हीरा बनाया गया है, पर वह वास्तविक हीरे से महँगा पड़ता है। इससे भी यही जान पड़ता है कि पदार्थ की मौलिक चेतना विघटित और संगठित होकर नए-नए पदार्थों का निर्माण कर लेती है। यहाँ यह लगेगा कि यह

प्रयोग मानव कृत है, फिर मूल-तत्त्व की अपनी इच्छा का क्या महत्त्व रहा ?

वैज्ञानिक यह बताते हैं कि परमाणु में इलेक्ट्रॉन चक्कर लगाते-लगाते एकाएक अपना स्थान बदल देता है, जिसका कोई कारण नहीं होता, उसका यह स्थान परित्याग कार्य-करण सिद्धांत (लॉ आफ कॉजेशॅन) से परे होता है, अर्थात् विद्युत् जहाँ एक बद्ध तत्त्व है, वहाँ उसकी अपनी इच्छा और चेतनता भी है, भले ही वह विद्युत् तत्त्व से कोई सूक्ष्मतर स्थिति हो और अभी उसका अध्ययन एवं जानकारी वैज्ञानिकों को नहीं हो पाई हो। इस मौलिक स्वाधीनता को 'लॉ-ऑफ इनडिटरमिनेसी' के नाम से पुकारा जाता है और उसी के आधार पर अब वैज्ञानिक भी कहने लगे हैं कि विश्व की सभी वस्तुएँ एक-दूसरे से संबद्ध, परस्पर अवलंबित और एक ही संगठन में पिरोई हुई हैं। सारा संसार अर्थात् पृथ्वी से लाखों मील दूर के नक्षत्र तक गणित के सिद्धांतों से बँधे हुए हैं, वैज्ञानिक तब यह मानने को विवश हुए कि संपूर्ण जगत् एक ही वांछित संस्थान (रैशनल सिस्टम) के द्वारा संचालित है। प्रकृति में पूर्ण व्यवस्था और नियमबद्धता है और वह सब किसी विश्वव्यापी, स्वेच्छाचारी शक्ति के ही आधीन है।

हम उसका स्वरूप भले ही समझ न पाते हों, पर उस सत्ता के अस्तित्त्व से इनकार नहीं कर सकते। उसी ने अपनी इच्छा से धरती में पुरुष तत्त्व को पैदा किया। जब अनेक इच्छाएँ जीवधारियों के रूप में उत्पन्न हुईं, तो उनमें शक्ति और इच्छा बल के कारण परस्पर संघर्ष हुआ। एक जीव दूसरे को खाने और सताने लगा। उससे थोड़े ही दिन में सृष्टि का अंत दिखलाई देने पर ईश्वरीय सत्ता को किसी सर्वशक्ति संपन्न जीवधारी के उत्पन्न करने की कल्पना सूझी होगी। मनुष्य का आविर्भाव उसी इच्छा का परिणाम लगता है। मनुष्य में ही वह क्षमता है, जो उपरोक्त सातों इच्छाओं में क्रम और अनुशासन, न्याय एवं व्यवस्था बनाए रख सकता है,

क्योंकि उसके लिए प्रत्येक उचित शक्ति भगवान् ने उसे दी है, जो और किसी भी प्राणी को नहीं दी। यदि मनुष्य इस बात को भावनाओं की गंभीरता में उतरकर, समझता नहीं और स्वयं भी पाशविक आचरण करता है, तो उसे उस योनि में जाने का भगवान् का दंड-विधान अनुचित नहीं है। उत्तराधिकार में पाए हुए साम्राज्य और शक्तियों को मनुष्य जैसा विवेकशील प्राणी अपने स्वार्थ में लगाए और विश्व-व्यवस्था या ईश्वरीय आदेश का परिपालन न करे, तो यह दंड मिलना उचित ही है।

अमीबा से मनुष्य जाति के विकास की पाश्चात्य थ्योरी को समूचे ज्ञान का एक अंश कहा जा सकता है, संपूर्ण नहीं। जो शक्ति सूर्य, चंद्रमा जैसे प्रकाशवान् नक्षत्र, शीत, ग्रीष्म, वर्षा जैसी जटिल और व्यापक प्रकृति उत्पन्न कर सकती है, उसे अमीबा से हाइड्रा, जोड़वाला, मछली, मंडूक, सर्पणशील पक्षी और फिर स्तनधारी जीव के क्रमिक विकास की क्यों आवश्यकता हुई होगी ?

विकास की थ्योरी को सत्य मान लें, तो यह सोचना पड़ेगा कि अमीबा के एक कोष्ठ से ही स्त्री और पुरुष दो भेद कैसे पैदा हो गए ? यदि 'अमीबा' के बाद दो कोष्ठ का 'हाइड्रा' हुआ, तो क्रम से सभी योनियाँ दुगुने परिणाम से क्यों नहीं बढ़ती ? यदि सर्पणशील जीवों से पर-धारी जीव विकसित हुए तो वह कृमि जो पर-धारी होते हैं और उड़ लेते हैं, वह किस विकास-प्रक्रिया पर आधारित हैं ? पक्षी, जल-जंतु और कीड़े सभी मांस खाते हैं, स्तनधारी यदि उन्हीं से विकसित हुए तो गाय, भैंस और बकरी आदि मांस क्यों नहीं खाते ? एक-सी स्थिति में उत्पन्न हुए हाथी और हथिनियों में, मुर्गी और मुर्गे में तथा मोर तथा मोरनी में शारीरिक विकास में अंतर क्यों पाया जाता है ? स्मरण रहे कि हथिनी के बड़े दाँत नहीं होते, मोरनी के लंबे पंख और मुर्गी के सिर में कलगी नहीं होती। प्राणियों में दाँतों की संख्या और आकृति, प्रकृति में अंतर पाया जाता है।

घोड़े के स्तन नहीं होते, बैल के अंडकोष के पास स्तन होते हैं। यदि यांत्रिक सिद्धांत पर प्राणियों का विकास हुआ, तो पक्षियों की अपेक्षा कछुए और सर्प ने अधिक जीवन क्यों पाया ? यदि ऐसी आशंकाएँ हैं, जिनसे यह पता चलता है कि मनुष्य अन्य जीवों की विकसित अवस्था न होकर ईश्वरीय इच्छा से प्रकट अपने आप में एक पूर्ण चमत्कार है और वह किसी प्रयोजन के लिए ईश्वरीय इच्छा से ही हुआ है। मनुष्य शरीर की जटिल प्रक्रियाएँ, चक्रों और ग्रंथियों की संरचना ऐसी है, जिसे देखकर भी ऐसा लगता है कि मनुष्य का निर्माण किसी बहुत सूझ, समझ और योग्यता के साथ हुआ है, उसमें अन्य जीवों की विकसित स्थिति के लक्षणों का पूर्णतया अपवाद है।

जब तक एक स्थान के वृक्ष-वनस्पतियाँ या जीव अन्य स्थानों में नहीं ले जाए जाते, वहाँ उनका अभाव रहता है, इससे भी विकासवाद का सिद्धांत कट जाता है। भारत में बाघ, सिंह और हाथी होते हैं, इंग्लैंड में नहीं। साँप, बिच्छू और अन्य गर्मी में पैदा होने वाले प्राणी शीत प्रधान योरोपीय देशों में नहीं होते। अंग्रेज और भारतीय जलवायु के प्रभाव में अपने-अपने वर्ण के होते हैं, रंगरूप सभी भिन्न होते हैं। योरोपवासी जब तक नहीं गए थे, आस्ट्रेलिया में खरगोश नहीं थे। जब तक प्राणी कहीं पहुँचकर, अपनी संतति का स्वयं विस्तार न करे, वहाँ कोई जीव हो नहीं सकता। मनुष्य के संबंध में भी यही बात है। उसने अपना विकास तो किया है, पर वह भिन्न-भिन्न देशों में किसी एक स्थान से विकसित होकर गया है।

इस विकास की थ्योरी को बुद्धिसंगत नहीं माना जा सकता, वह हम ऊपर लिख चुके हैं। मनुष्य की आदिम स्थिति और आज की स्थिति की तुलना करें तो लगता है कि शरीर, स्वास्थ्य, आयु और ज्ञान सब दृष्टि से आज का मनुष्य बहुत छोटा है। विकास की स्थिति में तो मनुष्य को अब तक कुछ से

कुछ हो जाना चाहिए था, पर प्रकृति में अपने आप विस्तार की क्षमता नहीं है।

इतने वर्ष पूर्व जो भी जीव सृष्टि में पहले आया होगा, उसे लेकर ही चलें, तो भी यही मानना पड़ेगा कि उसे चाहे प्रकृति कहें या परमेश्वर, उनमें से किसी की इच्छा या चेतन-क्रियाशीलता के द्वारा ही हुआ होगा। मेंटल रेडियो के लेखक अप्टन सिंक्लेयर के इस कथन से भी यही बात पुष्ट होती हैं, वे लिखते हैं—"हम स्पष्ट रूप से कॉस्मिक या ऐच्छिक चेतना का चिह्न पा रहे हैं—कुछ ऐसा मानसिक पदार्थ (मेंटल स्टफ) हम सबमें समान होता है, हम उसे वैयक्तिक चेतना में ला सकते हैं। हमें यह भी मालूम है कि एक सर्वमान्य (यूनीवर्सल) मानसिक पदार्थ भी उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार सर्वमान्य शरीर पदार्थ (यूनीवर्सल बाडी स्टफ), जिससे हमारा निर्माण होता है। हम सब उसी इच्छा से जन्मे हैं।"

वैज्ञानिकों के यह सूत्र आगे और भी भारतीय दावे की स्पष्ट पुष्टि करेंगे और यह बताएँगे कि मनुष्य का जन्म किसी अज्ञात शक्ति की उद्देश्यपूर्ण इच्छा से हुआ है, उसे अन्य-जीवन के बीच शांति, व्यवस्था, मर्यादा, पुण्य और आनंद की उपलब्धि के लिए भेजा गया है, ताकि भटकती हुई इच्छाएँ फिर आनंद में परिणत हो सकें। जो मनुष्य इस ईश्वरीय प्रयोजन को पूरा नहीं करता, वह बार-बार उसी अन्य-जीवन में कष्ट भोगने का ही दंड पाता है।

● विकास या पतन अपनी इच्छा से—

विकासवाद के सिद्धांतों को वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी पुनः परखा जा रहा है और नयी शोधें, नए निष्कर्ष भारतीय दर्शन की मान्यताओं को ही पुष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए पुनर्जन्म के सिद्धांत को ही लें। महर्षि वशिष्ठ ने राम को पुनर्जन्म प्रकरण पढ़ाते हुए कहा है—

आशापाश शतावद्धा वादनाभाव धारिणः।
कायात्कायमुपायान्ति वृक्षाद्वृक्षमिवाण्डजा।।

हे राम ! मनुष्य का मन सैकड़ों आशाओं (महत्त्वाकांक्षाओं) और वासनाओं के बंधन में बँधा हुआ मृत्यु के उपरांत उन क्षुद्र वासनाओं की पूर्ति वाली योनियों और शरीरों में उसी प्रकार चला जाता है, जिस प्रकार एक पक्षी एक वृक्ष को छोड़कर फल की आशा में दूसरे वृक्ष में जा बैठता है।

मनुष्य जैसे विचारशील प्राणी इतर योनियों—मक्खी, मच्छर, मेंढक, मछली, साँप, बैल, भैंस, नेवला, शेर, बाघ, चीता, भेड़िया, कौवा आदि योनियों में किस प्रकार चला जाता होगा ? यह बात राम की समझ में नहीं आई। उन्होंने अपनी शंका महर्षि के समक्ष प्रकट की और कहा—"भगवन् ! मनुष्य जैसा समझदार व्यक्ति भला दूसरी योनियाँ क्यों पसंद करेगा ?" इस पर महर्षि ने राम को जिस ढंग से जीवात्मा द्वारा अन्य शरीर धारण करने की अवस्था और मनोविज्ञान समझाया है, वह वस्तुतः हर विचारशील व्यक्ति के लिए मनन करने की अत्यंत महत्त्वपूर्ण वस्तु है—वशिष्ठ ने राम को वह तत्त्वज्ञान जिन शब्दों में दिया, योगवशिष्ठ में उन्हें तीसरे अध्याय के ५५ सूत्र में ३६, ४०, ४१ और ४२ श्लोकों में इस प्रकार बताया है—

"हे राम ! वीर्य रूप में जीवात्मा ही स्त्री की योनि में आता है और गर्भ में पककर एक बालक का रूप धारण करता है। (यहाँ शास्त्रकार का वह कथन भी प्रामाणिक है, जिसमें आत्मा को अणोऽरणीयान्—अर्थात् सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कहा गया है। पुरुष शरीर का वीर्य कोष (स्पर्म) अत्यंत सूक्ष्म अणु होता है, यह विज्ञान भी सिद्ध कर चुका है) और अपने पूर्व जन्मों के संस्कारों के अनुरूप अच्छा या बुरा शरीर प्राप्त करता है।" उल्लेखनीय है कि उसी कोष में ही जीव की शारीरिक रचना के सारे गुण सूत्र (क्रोमोसोम) रहते हैं, यह भी विज्ञान सिद्ध कर चुका है। बालक

धीरे-धीरे बढ़ने लगता है और इस प्रकार वह युवावस्था में पदार्पण करता है। पकी हुई इंद्रियाँ अपने सुख माँगती है, कुछ पूरी होती हैं, पर अधिकांश अधूरी। अधूरी रह गई वासनाओं-महत्त्वाकांक्षाओं को मनुष्य अपने मन में भीतर ही भीतर दबाता रहता है, क्योंकि एक बार उठी वासना जब तक पूर्ण नहीं हो जाती, नष्ट नहीं होती वरन् वह भीतर ही भीतर और भी बलवती होती रहती है। (फ्रायड ने स्वप्न प्रकरण में स्वीकार किया है कि मनुष्य की दमित वासनाएँ ही स्वप्न के उसी तरह के काल्पनिक चित्र तैयार करती हैं और मनुष्य अद्‌भुत तथा अटपटे स्वप्न देखता है।) वासनाओं के दमन से शरीर के पंच भौतिक पदार्थों पर दबाव पड़ता है और वे क्रमशः कमजोर होते चले जाते हैं, जिससे वृद्धावस्था आ जाती है और मनुष्य का शरीर मर जाता है, पर मन अपनी वासना के अनुसार एक-दूसरे जगत् में प्रवेश कर जाता है। (गीता में भगवान् कृष्ण ने शरीरों को क्षेत्र या जगत् कहा है। महर्षि वशिष्ठ ने यह जो दूसरे जगत् में जाने की बात कही उसका तात्पर्य दूसरी योनि के शरीर से ही है। शरीर और भौतिक प्रकृति में कोई अंतर नहीं है। यह विज्ञान भी मानता है कि अब तक ढूँढ़े गए १०८ तत्त्व ही विभिन्न क्रमों में सजकर विभिन्न प्रकार के किन्हीं और शरीरों की रचना करते हैं।) इस प्रकार अपने तन की वासना के अनुरूप जीव तब तक अनेक शरीरों में भ्रमण करता रहता है, जब तक उसकी वासनाएँ पूर्ण शांत नहीं हो जातीं और वह फिर से शुद्ध आत्मा की स्थिति में नहीं आ जाता। प्रबुद्ध आत्मा बालक के रूप में फिर से जन्म लेती है। अब यह उसके अधिकार की बात होती है कि वह अपना फिर से प्राप्त यह सौभाग्य सार्थक करे। आत्म साक्षात्कार, स्वर्ग मुक्ति जैसे पवित्रतम जीवन उद्देश्य को सफल बनाने या फिर से उन्हीं तुच्छ भोग-वासनाओं और अहंकारपूर्ण आकांक्षाओं की दिशा में अपनी प्रगति प्रारंभ करके, फिर उन्हीं ८४ लाख योनियों में चक्कर काटने के लिए चल दे।

जीवात्मा के बंधन और मुक्ति के स्वरूप का इन पंक्तियों में महर्षि वशिष्ठ ने इतना सुंदर और युक्ति संगत दर्शन प्रस्तुत किया है, जिसे पढ़कर यही मानना पड़ता है कि उन्होंने अपनी बुद्धि और अपने मन को कितना सूक्ष्म और शुद्ध बनाकर, इन तथ्यों की खोज की होगी। इस देश में लाखों वर्षों तक आत्मा का यह दर्शन लोगों को जीवन मुक्ति की दिशा प्रदान करता रहा। यहाँ का औसत नागरिक भी मूल आत्मा के गुणों और शक्तियों से परिपूर्ण हुआ करता था। थोड़े शब्दों में भारतवर्ष में स्वर्ग ही उतरकर आ गया था।

किंतु पश्चिम में इस सिद्धांत से बिल्कुल उलटा "विकासवाद" का सिद्धांत [एवोल्यूशन थ्योरी] जब से चल पड़ा, तब से जीवात्मा के इस महान् दर्शन का पतन शुरू हुआ और लोग आत्मा को ऊर्ध्वगामी और शक्तिशाली बनाने वाली साधनाओं को छोड़ बैठे। विकासवाद का सिद्धांत मूल रूप से मनुष्य शरीर का रचना काल ढूँढने और यह शरीर कैसे बना, इस रहस्य को जानने के लिए प्रकाश में आया, पर उसे जिस रूप में प्रस्तुत किया गया, उससे मनुष्य और कला, मनुष्य और उसके साथ अनिवार्य रूप से जुड़े हुए मनोविज्ञान का संबंध ही टूट गया। एक कोषीय जीव से जटिल कोशों वाले शरीरों की रचना का विकास दरअसल जीवात्मा के पतन का ही उलटा खड़ा किया हुआ ढाँचा है। संसार में जीवों की संख्या इतनी अधिक है कि उनको एक क्रम में सजाकर यह सिद्ध करना कि मनुष्य शरीर अमीबा जैसे किसी क्षुद्र एक कोषीय जीव का विकसित रूप है, कोई कठिन काम नहीं है, पर विकासवाद का सिद्धांत आखिर मनुष्य के साथ जुड़े हुए मनोविज्ञान को कहाँ संतुष्ट कर पाता है ? उसका खड़ा किया हुआ अपना ही ढाँचा अब बेबुनियाद सिद्ध हो रहा है। नई वैज्ञानिक उपलब्धियों ने जो नए प्रश्न खड़े कर दिए, विकासवादियों के पास उनके कोई उत्तर नहीं है।

उदाहरण के लिए स्वयं डारविन ने जो कि विकासवाद के जन्मदाता थे, यह माना है कि अन्य जीवों, विशेष रूप से बंदर के शरीर से मनुष्य शरीर में विकसित होने की श्रृंखला हम ढूँढ़ नहीं सके। उन्होंने अपनी इस असफलता के बावजूद भी यह कहा कि—एक दिन ऐसे अस्थि-कंकाल मिलेंगे, जो इस खोई हुई कड़ी [मिसिंग लिंक] की पूर्ति करेंगे। पीछे कुछ ऐसे अस्थि-कंकाल मिले भी, जिन्हें मनुष्य और मनुष्येत्तर जीवों के शारीरिक विकास की कड़ी माना जाता है। उदाहरण के लिए १६५६ में डॉ० लीके ने टंगनियका प्रांत में ओल्डवह जार्ज नामक स्थान में खुदाई कराते समय एक कंकाल पाया, जिसका नाम "आस्ट्रोलिपिथोस" रखा गया। उस मनुष्य के पास ही हथियारों के आकार की कुछ वस्तुएँ पाई गईं। विकासशास्त्रियों ने उसे मनुष्य का समीपवर्ती वंशज माना। वैज्ञानिक कून ने पहले ही शंका प्रगट की थी कि विकासवाद की पुष्टि के लिए सबसे पहले वैज्ञानिक जानकारियाँ उपलब्ध की जानी चाहिए। यह नहीं मान लेना चाहिए कि विकासवाद ही सही है अन्यथा वैज्ञानिक किसी भी तरीके से प्रमाण जुटाने का प्रयास करेंगे और इस तरह एक गलत सिद्धांत को भी सच्चा प्रमाणित कर दिया जायेगा। उन्होंने यह बताया कि गिब्बन, ओरंगउटान, गोरिल्ला और चिंपांजी—ये चार बंदरों की जातियाँ हैं, जिनमें गोरिल्ला और चिंपांजी मनुष्य की शारीरिक बनावट से बहुत अधिक समानता रखते हैं। इनके कंकाल मनुष्य के कंकाल से मिलते-जुलते होते हैं, इसलिए यह संभव है कि जिन कंकालों को मनुष्य के और अन्य जीवों के बीच की कड़ी माना जाता है, वे कड़ी न होकर किसी बंदर के ही कंकाल रहे हों। कम से कम १६५६ में खोजे गए अस्थि-कंकाल के बारे में यही हुआ। वैज्ञानिकों ने इस कंकाल की खोज करते समय आगे चलकर पाया कि यह अस्थि-कंकाल तो कुल १०० वर्ष ही पुराना है और इस जाति के लोग अभी भी धरती में पाए जाते हैं।

वैज्ञानिक श्री सी० एस० कून ने अपनी "दि ओरिजिन ऑफ रेसेस" नामक न्यूयार्क में सन् १९६२ में प्रकाशित पुस्तक के पेज ४ में विकासवाद को गलत बताते हुए लिखा है—"अगर मनुष्य की जातियाँ कुछ हजार साल पूर्व किसी एक जाति के प्राणी से बनी होतीं, तो उन सब जातियों को एक ही भाषा बोलनी चाहिए थी। एक ही उत्पत्ति केंद्र होने पर यह कैसे संभव है कि विश्व में हजारों प्रकार की बोली और वर्णमाला की रचना हुई ? एस्किमो और एल्यूट जाति के लोग एक ही भाषा बोलते हैं, जबकि दोनों के इतिहास में २००० वर्ष का अंतर है। दूसरी ओर आस्ट्रेलिया और तस्मानियाँ में रहने वाली कुछ जातियाँ उन जातियों से समानता रखती हैं, जिनको १००००० वर्ष पुराना माना जाता है।"

वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह भी पता चला है कि प्राचीन काल के मनुष्य का मस्तिष्क आज के मनुष्य के मस्तिष्क से विकसित था। तब के मस्तिष्क की क्षमता (कैपिसिटी) १६०० सी० सी० थी जबकि आज १३०० सी० सी० है। विकास क्रम में ऐसा नहीं होना चाहिए था। विकासवाद के अनुसार आदि मानव को बर्बर, असभ्य और जंगली होना था, पर भूगर्भ की खुदाई से प्राप्त प्राचीनतम सिक्के, हथियार और कला-कृतियाँ इस बात के प्रमाण है कि आज की अपेक्षा पहले के लोग शरीर-मस्तिष्क दोनों से अधिक समर्थ थे। अलेक्जेंडर मारशाक ने अपनी पुस्तक "दि बैटॅन आफ माँटगेडियर नेचुरल हिस्ट्री" के वाल्यूम एल ३६ नं० ३ मार्च सन् १९७० पेज ५८ में लिखा है कि, मैं पिछले ६ वर्षों के निरंतर अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्राचीन मनुष्यों की कला और संस्कृति आज से ऊँचे स्तर की थी। विकासवाद के अनुसार कला को भी विकासोन्मुखी होना चाहिए। इससे प्रकट है कि विकासवाद का सिद्धांत मनगढ़ंत अधिक तथा तथ्यपूर्ण कम है।

राकशेल्टर ६ होशंगाबाद मध्य प्रदेश की गुफा में एक जिराफ और खंगधारी घुड़सवार की आकृति बनी है। भारतीय पुरातत्त्व

जिसकी मान्यताएँ पाश्चात्य देशों पर ही आधारित हैं, ने इस चित्रकारी को ईसा से अधिक से अधिक १००० वर्ष पुराना माना है, जबकि हिंदुस्तान में इतने समय पहले तक कोई भी जिराफ नहीं पाया जाता था। जिराफ का एक कंकाल हिमालय में मिला था, उसकी आयु ११ लाख वर्ष पूर्व बताई जाती है। इसी प्रकार मिर्जापुर की गुफाओं में, रामगढ़ की गुफाओं में, फ्रांस की गुफाओं में ऐसे चित्र उपलब्ध हैं, जो यह प्रमाणित करते हैं कि मनुष्य जाति अपने प्रादुर्भाव काल से कला और संस्कृति का ज्ञान रखती रही है। यह तथ्य विकासवाद से बिल्कुल उलटे हैं।

लगभग २।। करोड़ वर्ष पूर्व अमरीका में एक जानवर पाया जाता था, उसके अस्थि-कंकालों के अध्ययन के आधार पर उसका नाम मूर्खपाद (फूलिश फुटेड, मोरोपस) रखा गया है। इसी तरह के जीव कुछ अन्य जैसे डायनासौर, डेविल कार्क स्क्रू, स्टैबिंग कैट भी उस समय पाए जाते थे। यह अस्थि-कंकाल विकासशास्त्रियों के लिए आज भी सिर दर्द हैं, वे यह नहीं समझ पा रहे कि इन्हें विकास सिद्धांत की किस श्रेणी में रखा जाए ?

हमारा उद्देश्य इन पंक्तियों में विकासवाद की आलोचना करना नहीं, वरन् यह बताना है कि इस सिद्धांत ने मनुष्य जीवन के एक शाश्वत सिद्धांत से किस प्रकार उसका ध्यान खींचकर उसे भ्रमित किया और उसे केवल भौतिक सुखों के ही आकर्षण जाल में फँसने को विवश किया।

मनुष्य से आश्चर्यजनक मनुष्य का मन और उसका मनोविज्ञान है। मनुष्य की उत्पत्ति के साथ उसकी पुरानी हड्डियों का संबंध जोड़कर विकासवाद का सिद्धांत बना दिया जाए, पर उसके अभिन्न अंग मनोविज्ञान के साथ कोई सिद्धांत न तय किया जाए, इससे बढ़कर मूर्खता और दुर्भाग्य क्या हो सकता है ? आज विज्ञान मानता है कि संस्कार और संपूर्ण मनोमय चेतना कोश (सेल) के भीतर रहते हैं। वह शक्ति या प्रकाश के रूप में प्रकृति की

विलक्षण और जटिलतम रचना है। सृष्टि के समस्त १०८ प्रकार के तत्त्व और उनसे समिश्रित १ × २ × ३ × ४ × ५ × ६ × ७ × ८ × ९ × १० × ११ × १२ × १३ × १४ × १५ × १६ ..... × १०८ = प्रकार के गुण सूत्रों से संपन्न कोश (सेल) मनुष्य शरीर में होते हैं। यह संस्कार शक्ति के रूप में सदैव भ्रमण करते हैं। केवल इनमें रासायनिक परिवर्तन हुआ करता है। तब फिर यह क्यों न माना जाए कि मनुष्य की चेतना ही अपने एक-एक गुणों का त्याग करती हुई मनुष्य योनि से भटकती हुई अन्य योनियों में भ्रमण किया करती है। इस दृष्टि से यदि नए सिरे से अध्ययन प्रारंभ किया जायेगा, तो पता चलेगा कि विकासवाद का सिद्धांत बिल्कुल उलटा है और यह सच है कि मनुष्य-चेतना या आत्म-चेतना ही है, जो अपने मूलभूत गुणों को त्यागकर वासनाओं के कारण अन्य शरीरों में भ्रमण करने को विवश होती है। डॉ० फ्रायड के अनुसार दमित वासनाएँ स्वप्न की कल्पना में आती हैं, यदि उसी सिद्धांत को व्यापक रूप से भारतीय आचार्यों ने यह कहा कि जीवन भर की दबी हुई महत्त्वाकांक्षाएँ, वासनाएँ, मन अन्य शरीरों में जाकर, चरितार्थ करता है, अर्थात् मनुष्य देखने में चाहे कितना साफ-सुथरा, शिक्षित दिखाई देता हो; अपनी वासनाएँ, तृष्णाएँ जब तक नहीं छोड़ता, तब तक वह इन निकृष्ट योनियों में जाने को मजबूर होता रहता है, इसमें चिढ़ने जैसी कोई बात क्यों हो ?

प्रसिद्ध शल्य-चिकित्सक (शिकागो) डॉ० विल्डर पेनफील्ड ने मनुष्य के मस्तिष्क पर अनेक प्रयोग करके बताया है—"इंच के दसवें भाग जितनी मोटी लगभग २५ वर्ग इंच क्षेत्रफल की मस्तिष्क में काले रंग की दो पट्टियाँ होती हैं, यह पूरे मस्तिष्क को ढके रहती हैं, मनुष्य जब पुरानी बातें स्मरण करने का प्रयत्न करता है, तब स्नायुओं से निकलती हुई विद्युत् धाराएँ इन पट्टियों से गुजरती हैं और वह घटनाएँ याद हो जाती हैं। सामान्य स्थिति में मनुष्य अपनी मानसिक विद्युत् को न तो इतना प्रखर बना पाता है

और न ही एकाग्र। जिससे बिना किसी के मदद से इस काली पट्टी के संपूर्ण इतिहास का पता लगा सके और जान सके कि वह पूर्व जन्मों में कब क्या था ? पर वैज्ञानिक प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मन कभी मरता नहीं, अपनी वासना और कर्मों के अनुसार वह बार-बार जन्म लेता और रूपांतरित होता रहता है।

उदाहरण के लिए डॉ० पेनफील्ड ने एक व्यक्ति की इस काली पट्टी में विद्युत् प्रवाहित की, तो वह एक गीत गुनगुनाने लगा, जो न तो अमरीकन था न जर्मन। उपस्थित कोई भी व्यक्ति उसे समझ न सका। उस गीत को टेपरिकार्ड कर लिया गया और भाषाशास्त्रियों की मदद ली गई, तो पता चला कि वह भाषा किसी आदिवासी क्षेत्र की थी और वह गाना सचमुच ही उस क्षेत्र के लोग गाया करते हैं। इस तरह की अनेक घटनाएँ डॉ० पेनफील्ड ने संग्रहित की हैं, जो यह बताती हैं कि जीवों के शरीर से विकासवाद को ही पुष्ट करने में लगे रहना समस्त मानव जाति के साथ एक प्रकार का धोखा है। हमें मन और उसके उत्थान या पतन का विज्ञान भी ढूँढ़ना चाहिए। यदि मन की शक्ति का ज्ञान वैज्ञानिक पा सकें और उसे मानव जीवन के साथ जोड़ सकें, तो आज महर्षि वशिष्ठ की जो बातें लोग समझ नहीं पा रहे हैं, कल राम की तरह सभी उसे समझने और मनुष्य शरीर में ही ईश्वरत्व की प्राप्ति करने लगें। जब तक यह नहीं होगा, मनुष्य जाति पतित और निम्नगामी योनियों में भ्रमण करती रहे, तो इसे न तो कौतुक माना जाए न ही अतिशयोक्ति।

यह तथ्य प्रतिपादित करते हैं कि मनुष्य न तो अमीबा से बना है और न ही किसी ऐसे प्राणी से जिसके बाद की कड़ियाँ विलुप्त हो गई हों। वस्तुतः मनुष्य सर्व-समर्थ परमात्मा की संतान है, अपने भले-बुरे कर्मों के कारण ही उसे ऊँची और गिरी हुई योनियों में जाना पड़ता है।

❐ ❐

मान भी लें कि विकासक्रम सही है, पर·····

*

विकासक्रम या आनुवंशिकी विज्ञान के अनुसार मनुष्य दूसरे प्राणियों से विकसित हुआ अथवा उसने अपनी सारी विशेषताएँ पूर्वजों से अर्जित कीं। इस सिद्धांत को एक सीमा तक ही सही माना जाना चाहिए। पूरी तरह यही सत्य है अथवा विकास की अंतिम सीमा इसी को मान लेना पूर्वाग्रह ग्रस्त मान्यताओं से प्रेरित-पीड़ित कहा जायेगा। यदि इन मान्यताओं को पूरी तरह सच मान भी लिया जाए, तो उन घटनाओं को क्या कहेंगे, जो आए दिन मनुष्य की बुद्धि को चकरा देती हैं ? उदाहरण के लिए भूरी या नीली आँखों वाले माता-पिता की संतान भी भूरी या नीली आँखों वाली हो तो इसे कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कहेंगे, क्योंकि बच्चे का शरीर माता-पिता के शरीरों के गुण-सूत्र (क्रोमोसोम्स) से ही तो बनता है। स्वभाव और गुणों में भी पैतृक संस्कारों का प्रभाव रहता है। कई बार तो यह इतने जबर्दस्त रूप में व्यक्त होता है कि कोई आश्चर्य किए बिना नहीं रह सकता।

उदाहरण के लिए फ्रांस के क्लरमांट शहर का क्रेटीन परिवार। क्रेटीन एक पादरी था। एक बार घर वालों से किसी बात पर विवाद हो जाने के कारण ईर्ष्यावश उसने एक ऐसी लड़की से विवाह कर लिया, जिसके वंशजों को पीढ़ियों से कुख्यात अपराधी माना जाता रहा था। इस दंपति से जीन क्रेटीन नामक पुत्र पैदा हुआ, जिसे हत्या और डाकेजनी के अपराध में फाँसी दी गई। जीन क्रेटीन के पियरी, टामस तथा बैपटिस तीन लड़के हुए। अपने पिता के समान यह तीनों भी अपराध जगत् के मूर्धन्य निकले और यह तीनों भी फाँसी की भेंट चढ़े। पियरी के इकलौते लड़के जीन फ्रांसिस, टामस के दो पुत्र—फ्रांसिस और मार्टिन, बैपटिस की

एकमात्र संतान जीन फ्रांसिस्—इन सबमें भी हत्या और डकैती के दुर्गुण पाए गए, वह सभी फाँसी से या सजा भुगतते मरे। मार्टिन को मार्टिन जूनियर केने के सुधारगृह में रखा गया, वहाँ उसने आत्महत्या कर ली। जीन फ्रांसिस और उसकी पत्नी मेरी टेम से सात संतानें—सभी पुत्र हुए और वह सभी हत्या और लूटपाट के मामले में दंड के भागी बनें।

किंतु जो बातें परंपरागत न रही हों, यदि वह प्रकाश में आयें तो यही कहा जा सकता है कि संसार में कोई एक ऐसी सत्ता अवश्य है, जो प्राकृतिक नियमों से भी सर्वोपरि है। लैटले (फ्रांस) में एक बार भयंकर तूफान आया। तेज बिजली कड़की और टूट पड़ी एक किसान के कृषि फार्म पर। उस फार्म में हजारों काली और सफेद भेड़ें थीं। बिजली से केवल निर्जीव वस्तुएँ बच सकती हैं, काले-गोरे का भेदभाव उसे क्या ? किंतु यहीं तो उसने भेदभाव किया—जितनी काली भेड़ें थीं मर गईं, किंतु उस बिजली गिरने के फलस्वरूप, एक भी सफेद भेड़ का बाल तक बाँका न हुआ।

कोई पदार्थवादी कह सकता है कि इसमें कोई बात शरीर कोशों से संबंधित रही होगी, जिसे विज्ञान न समझ पाया हो, पर जिसने सफेद और काली भेड़ों को गुणशः दो भागों में बाँट दिया हो—एक को विद्युत् प्रभावक और दूसरे को विद्युत् शक्ति से भी सुरक्षित रहने से ओतप्रोत।

दो आँख, दो हाथ, दो कान, दो नथुने सबके होते हैं, किंतु आज तक विश्व-मानव के इतिहास में दो दिलों का एक भी उदाहरण नहीं, जिससे यह कहा जा सके कि यह आनुवंशिक गुण होगा, किंतु अपवाद से रिक्त रह जाए तो ईश्वरीय सत्ता को कौन माने ? ठोस पत्थर के अंदर जल और उस जल में मेंढक जैसा अद्भुत करतब था भगवान् का। नेपल्स (इटली) जियूसेप डीमाए के शरीर में एक नहीं दो-दो हृदय थे, दोनों काम करते थे। दोनों के शरीर की सारी मशीनरी का ढाँचा भिन्न था। लंदन की एकाडमी

ऑफ मेडिसिन आकर्षित हुई और उसने एक विलक्षण रहस्य को जानने का यत्न किया। दुर्भाग्य से दिल तो तभी पढ़े जा सकते थे, जब उनकी चीरफाड़ हो। भला चंगा आदमी उसके लिए क्यों राजी होता ? डीमाए तैयार तो हो गए और अपना एक दिल ६० हजार रुपए में बेच भी दिया, किंतु करार के अनुसार वह दिल मृत्यु के बाद ही लिया और परीक्षण किया जा सकता था। संभव है वैज्ञानिकों ने उससे कोई नई जानकारी पाई हो, पर अभी तक उसके बारे में कोई नया अनुसंधान सामने नहीं आया।

चीन के चिहली नगर में एक यूनानी रहता था, उसका जन्म १३८६ में हुआ, मृत्यु १४६४ में। ७४ वर्ष वह संसार के विलक्षण आश्चर्य के रूप में जिया। शी-स्वान नामक इस व्यक्ति का शरीर पारदर्शी था, उसके शरीर के भीतर का मांस और हड्डियाँ, श्वास गमन के मार्ग तक सभी अंग एक्स-रे किरणों से भी अधिक स्पष्ट देखे जा सकते थे। मनुष्य शरीर में अद्‌भुत शक्ति के प्रदर्शन का यह अद्‌भुत उदाहरण था, जिसका विज्ञान कोई भी हल प्रस्तुत नहीं कर सका।

शांसी प्रांत के राज्य मंत्री श्री लूमिन की आँखों में दो-दो पुतलियाँ थीं, जो जीव-विज्ञान का अविजित-आश्चर्य ही बनी रहीं। लूमिन बाद में गवर्नर हो गए, उनकी आँखों से काम करने की क्षमता में कोई अंतर नहीं था। फ्रांस के टूरकोइंग स्थान में सन् १७६३ में एक ऐसी लड़की ने जन्म लिया, जिसकी केवल एक आँख थी, वह ५५ वर्ष तक "क्लीमेंट चाइल्ड" के नाम से विख्यात रहीं। यह एक आँख भी भारतीय योगियों की तृतीय आँख का प्रमाण थी और नाक के ठीक ऊपर दोनों भौहों के बीच थी। योग-विज्ञान की मान्यता है कि इस स्थान पर पीयूष ग्रंथि होती है, जो वस्तुतः आध्यात्मिक तीसरे नेत्र का काम करती है, उसका जागरण हो जाने पर मनुष्य करोड़ों मील दूर की भी वस्तुएँ देख और अनुभव कर सकता है। यह लड़की इस आँख से सब कुछ

देख सकती थी। उसे देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि भगवान् ने उसे भेजकर मनुष्य को यह समझाने का प्रयास किया होगा कि मनुष्य बाह्य दृष्टिवादी ही न रहकर अंतर्दृष्टा भी बने, बिना उसके वह विश्व के यथार्थ को जान-समझ नहीं सकता।

ग्रान्सवर्ग के एक चरवाहे वाल्टर रिडिल मैन के पास एक भेड़ थी। भेड़ें संसार में बहुत हैं, बहुत हो चुकीं और न जाने कितनी अभी होंगी—इस सामान्य से जीव से लाभ तो हैं, पर उसमें कोई विशेषता न होने से उसे कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं। उसके शरीर में ऊन उगने का एक प्राकृतिक नियम है। दुनिया की हर भेड़ के शरीर में ऊन ही उगती है, किंतु इस भेड़ की पीठ पर घास उगती थी और भगवान् की उस प्रेरणा का दिग्दर्शन कराती थी कि यह शरीर माटी का एक घरौंदा मात्र है। प्रकृति की खूरसूरती है कि उसने हर शरीर में नई आकृति गढ़ी, पर उससे यह सत्य ओझल नहीं हो जाता कि शरीर का उपयोग केवल पार्थिव सुखों तक ही सीमित है, यदि उसका असाधारण उपयोग करना हो, तो उसके चेतन अंश की भी खोज और प्राप्ति की जानी चाहिए। परमात्मा ने यह प्रेरणा इस भेड़ की पीठ में घास उगाकर दी और अपनी महत्ता भी प्रतिपादित कर दी कि वह प्राकृतिक नियमों से भी बढ़कर कलाकार और रचनाकार है।

ईश्वर वाणी है—**"अद्भुतः अश्नुतोऽहम्"**—मैं अद्भुत हूँ, जो कभी नहीं सुना गया, वह भी मैं ही हूँ। यह थोड़े-से उदाहरण इस तथ्य के साक्षी हैं। प्रयत्न करें, साधनाएँ करें, तो उसके विराट् तात्त्विक स्वरूप को पाकर हम धन्य भी हो सकते हैं, जिसके लिए मनुष्य जैसा शरीर जीव को प्रदान किया गया है।

सम्राट् ग्रैंड डची के उत्तराधिकारी कास्पर हासर विसके के बारे में कहा जाता है कि वह दिन में सितारे देख व गिन सकता था। कास्पर हासर का बाल्यावस्था में अपहरण कर लिया गया था। उसे १८ वर्ष तक लगातार एक अंधेरी कोठरी में रखा गया। एक

रात वह चुपचाप काल-कोठरी से निकल भागा, तब वह १८ वर्ष की उम्र का था। अन्सपच बाइबेरिया में पहली बार उसने प्रकाश के दर्शन किए, पर तब तक न जाने उसकी किस आंतरिक शक्ति का विकास हो चुका था कि वह दिन में भी बखूबी तारे देख सकता था।

कास्पर हासर ही नहीं, विलक्षणताओं से भरे इस संसार में जीव-तत्त्व की सर्व-समर्थता, पूर्णता और उसके अद्‌भुतपन के सैकड़ों प्रमाण-पत्र मिलते हैं। सन् १०२४ को राजसिंहासन में बैठे इंग्लैंड के सम्राट् "एडवर्ड दि कनफेसर" जिसने १०६६ तक राज्य किया, की आँखें लाल थीं, चमड़ा दूध के समान तथा बाल और दाढ़ी बर्फ के समान सफेद थे।

आस्ट्रेलिया में एक "बुश टर्की" नामक एक चिड़ियाँ पाई जाती है, जो अंडे से निकलते ही उड़ जाती है और शत्रुओं के आक्रमण से लेकर अपनी खुराक ढूँढ़ लेने तक के सारे काम-काज भी करने लगती है। उसे सारा ज्ञान अदृश्य संसार से ही सिखाकर भेज दिया जाता है।

● अद्‌भुत और अश्रुत—

विचित्र प्रकार के जीव-जंतुओं के लिए न्यूयार्क-अमेरिका का चिड़ियाघर विश्व-प्रसिद्ध है। कई वर्ष पूर्व यहाँ एक ऐसा सर्प लाया गया, जिसके दो सिर थे। भारतवर्ष में एक 'दुमुहा' नामक सर्प पाया जाता है, इसके दोनों तरफ मुख होते हैं। किंवदंती है कि यह सर्प ६ माह एक तरफ के मुख से चलता है, ६ माह दूसरी ओर से। पर न्यूयार्क का सर्प यह जिसका नाम 'किंग स्नेक' रखा गया, एक ऐसा सर्प था, जिसके एकही तरफ दो मुख थे। दोनों मुख लगभग ३-३ इंच के थे। दोनों में दो-दो आँखें, नाक, कान और जीभें भी थीं। श्वास और भोजन ग्रहण करने की नली भी दो थीं, जो आगे चलकर मिलती और एक हो जाती थीं।

साँप के कहीं दो सिर नहीं होते, इसलिए क्रमागत संतानों में भी अनंत काल तक ऐसी विशेषता नहीं पाई जानी चाहिए थी, फिर सर्प के दो मुख क्यों हो गए ? मजेदार बात तो यह थी कि दोनों मुखों के दो मस्तिष्क-दो व्यक्तित्व भी थे। जब कभी एक मुख कोई शिकार पकड़ता, लोभी व्यक्ति की तरह दूसरा भी उस पर झपट पड़ता।

एक दिन किसी बात पर दोनों सिर झगड़ बैठे। एक ने आवेश में आकर दूसरे को मुख में भर लिया। मनुष्य जाति जिस तरह धन से नहीं अघाती, और अधिक, और अधिक की तृष्णा में सामाजिक विषमता उत्पन्न करती है, साँप ने उसी तृष्णा में दूसरे मुख को अंत तक निगल लिया। चिड़ियाघर के अधिकारी दौड़े। किसी तरह दोनों को छुड़ाया, पर दुर्गति ऐसी हो गई थी कि अंततः वह सर्प मर ही गया।

एक कछुए के साथ भी प्रकृति ने गहरी मजाक की थी। गोल आकृति वाले इस कछुए के भी दो सिर थे। दोनों के लिए दो-दो पैरों का विभाजन प्रकृति ने कर दिया था, पर उनमें कभी समझौता नहीं हो संका। एक सिर पूर्व की ओर तैरना चाहता, तो दूसरा पश्चिम को। परिणाम यह होता कि वह जहाँ का तहाँ चक्कर काटता रह जाता।

भारतवर्ष को स्वंतत्रता प्राप्त किए आज ५४ वर्ष हो गए, पर अपनी खींचा-तानी प्रवृत्ति के कारण यहाँ के निवासी जितने दुःखी पराधीनता में थे, स्वाधीनता में उससे भी अधिक दुःखी हैं। यह स्थिति उपरोक्त दो सिर वाले कछुए की तरह ही है।

दंडकारण्य क्षेत्र (जगदलपुर) के एक कबायली परिवार में नासैया नामक गोंड का एक पुत्र हुआ, जिसकी छोटी-सी पूँछ भी थी। यह लड़का जिसका नाम हनमैया रखा गया, जब १४ वर्ष की आयु का हुआ, तो उसकी पूँछ काफी बढ़ गई। बस्तर में महारानी अस्पताल के सिविल सर्जन डॉ० ए० सी० गौड़ ने लड़के की

परीक्षा करके बताया कि लड़के के सामान्य रूप से हाथ-पैर बढ़ने के साथ-साथ पूँछ भी बढ़ रही है। पूँछ गोलाकार और रीढ़ की सबसे नीचे तिकोनी हड्डी के एक इंच ऊपर थी, लड़का जब चलता, तब वह पैंडुलम की तरह हिलती।

डेनवर (कोलंबिया) में एक किसान के पास हरफोर्ड नामक गाय थी, जिसके दो स्थानों पर थनें थीं, सामान्य स्थान में भी और पीठ में भी। दोनों थनों से दूध निकलता था। दो जीभों वाली गाएँ बहुत मिलती हैं, पर दो थनों वाली नहीं। फिर थनों में दूध पीयूष ग्रंथि (पिट्यूटरी ग्रंथि) की क्रिया से बनता है, इसलिए दोनों स्थानों से पीयूष ग्रंथि का संबंध निर्विवाद है और वह यह बताता है कि भीतर ही भीतर शरीरों की गुप्त रचना करने वाली सत्ता कुछ भी कर सकने में समर्थ है। आँख फोड़वा (ग्रास हापर्स) की दो आँखें होती हैं, वह एक नियम है, पर एक ग्रास हापर्स वह भी होते हैं, जिनके पाँच-पाँच आँखें होती हैं और पाँचों आखें देखती भी हैं। कैलीफोर्निया के ह्विटियर में लैरी स्टोन नामक व्यक्ति ने एक बतख पाली। डैफी नामक यह बतख आधे-आधे अंडे देती थी और उन आधे अंडों से ही पूरे और स्वस्थ बच्चे पैदा होते थे।

बहुत दिन पहले जापान में एक मुर्गा उत्पन्न हुआ था। जैसे सब मुर्गे होते हैं, ऐसा ही यह भी था, किंतु इस मुर्गे की पूँछ असामान्य रूप से लंबी अर्थात् पूरे ३० फुट लंबी थी। जैसे किसी पेटू, आलसी और मुफ्त का माल मारने वाले का पेट इतना मोटा हो जाता है कि उसका चलना-फिरना कठिन हो जाता है, अपनी इस अनावश्यक लंबी पूँछ के कारण 'याकोहामा काक' नामक यह मुर्गा भी चल-फिर नहीं पाता था। एक पिंजरा बनाया गया था। उसमें बैठने के लिए एक ऊँची डाल जैसी बनाई गई थी, बेचारा दिन भर उसी में बैठा रहता था। इस मुर्गे को जो भी देखता—हँसे बिना नहीं रहता था। कभी-कभी वह बाहर निकाला जाता था, तो दो-तीन नौकर उसकी पूँछ ऊपर उठाकर चलते थे, तब थोड़ा-बहुत

घूम भी पाता था, नहीं तो बहुत पाकर भी वह गुमसुम बैठा ही रहता था।

मनुष्य जाति यों शरीरों से भिन्न प्रतीत होती है, पर इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, आवश्यकताएँ सबकी एक तरह की हैं। संसार में व्यवस्था बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि इच्छाओं और आवश्यकताओं के औचित्य पर विचार किया जाए और सबको आवश्यकता के अनुसार जीवनदायी सुविधाएँ मिलती रहें। इसकी एक शर्त है, वह यह कि लोग अपने लिए कम से कम चाहें, समाज के लिए अधिकतम देने की भावना रखें। देने वाला घाटे में नहीं रहता।

दक्षिणी ट्रिनीडाड द्वीप पर पहली बार पर्यटक "नवीन" की खोज में गए, तो उन्हें पहले से ही स्वागत के लिए तैयार "टर्न" और "अल्बेट्रास" नाम के दो पक्षी मिले। बतख की-सी आकृति वाले इन पक्षियों की विशेषता यह थी कि वह बिना हिचकिचाहट यात्रियों के पास चले आए। एक बार भगवान् राम के सहयोगी-सहचर रीछ-वानर समुद्र के किनारे बैठे कुछ परामर्श कर रहे थे, तब कहीं से संपाती नामक भयानक गिद्ध वहाँ जा पहुँचा, उसे देखते ही उन सबके प्राण सूख गए थे। वैसे ही इन यात्रियों के हृदय किसी अनिष्ट की आशंका से धड़क उठे थे, पर इनके कंधों पर आ बैठने वाले इन पक्षियों ने मानो उनको लज्जित करते हुए कहा हो—"हम तुम्हारे जैसे किसी भी प्राणी को अपने स्वार्थ के लिए पीड़ित प्रताड़ित और मारकर खा जाने वाले नहीं, आत्मा की आकांक्षाएँ क्या हैं, हम उसे जानते और आचरण करते हैं।

ये बातें—बेचारे पक्षियों ने मुख से नहीं कहीं, पर उनके व्यवहार से यही भावार्थ निकलता था। इन पक्षियों ने इनका स्वागत किया। कुछ उन्हें अपने घोंसलों तक ले गए, उनका मनुष्य की तरह अभिवादन किया और यात्रियों के अभिवादन का उत्तर भी दिया।

सारी पृथ्वी में यह जो प्रकृति दिखाई दे रही है, वह हमारी दृष्टि से भले ही तुच्छ जान पड़े, पर अध्ययन यह बताता है कि वह एक ही आत्म-चेतना की विलक्षण और रहस्यपूर्ण परिणति है। एक ही चेतना अपनी इच्छा-आकांक्षाओं के रूप में अनेक शरीर धारण करती रहती है। प्रकृति निर्जीव नहीं, जीवित क्रिया शक्ति है। प्रकृति का गुण और जीवन पद्धति उतनी ही विलक्षण हैं, जितनी इच्छा और वासनाओं वाला यह संसार रहस्यपूर्ण है।

डार्विन के मन में विकासवाद सिद्ध करने का एक भूत सवार था। इसी कारण उन्होंने यद्यपि सैकड़ों विलक्षण जीव-जंतुओं का अध्ययन किया पर, उन सबकी शारीरिक रचना का वह अंश ही चुनने में व्यस्त रहे, जो विकासवाद का सिद्धांत सिद्ध करने में सहायक मिला। आज का जीवशास्त्र का विद्यार्थी कदाचित् प्रश्न कर देता कि यदि प्राकृतिक परिवर्तनों और इच्छा शक्ति के कारण ही जीव एक कोशीय अवस्था से विकसित होकर, बहुकोशीय क्षुद्र जंतुओं की श्रेणी में आये और क्रमशः हाइड्रा, मछली, घोड़ा, बंदर आदि बनते-बनते मनुष्य बन गया तो फिर जीवों के स्वभाव और बनावट की इस विलक्षणता का क्या रहस्य है ? वह किस बात के विकसित परिणाम हैं, जो आज भी अनेक जीवों में दिखाई देते हैं।

उत्तरी अमेरिका में अलास्का से बाजा केलीफोर्निया तक समुद्र में ६० फुट से १८०० फुट तक की गहराई में "लेंप्रे" जाति की एक मछली पाई जाती है, इसका नाम है "हैगफिश"। कोई कल्पना नहीं कर सकता कि कई इंजनों वाले जैट विमान के समान इस मछली के ४ हृदय होते हैं, पेट होता ही नहीं और नथुना भी केवल एक ही होता है, दाँत जीभ में होते हैं। अपने शरीर को रस्सी की-सी गाँठ लगाकर, यह किसी मरे हुए जीव के शरीर में घुस जाती है और उसका सारा शरीर चटकर जाती है, पर आश्चर्य है कि भोजन न मिले तो भी वह वर्षों तक जीवित बनी रह सकती है।

हैगफिश किस जीव का विकास है, यह सोचना पड़ता तो डारविन अपना सिद्धांत अपने हाथों से काट देते। स्वयं आज का विज्ञान जगत् भी प्रकृति के इस रहस्य को सुलझा सकने में असहाय अनुभव कर रहा है। सन् १८६४ में कोपन हेगन की साइंस एकेडेमी ने घोषित किया कि जो वैज्ञानिक यह खोज कर लेगा कि हैगफिश की प्रजनन विधि क्या है, उसे भारी पुरस्कार दिया जायेगा, पर आज तक भी यह पुरस्कार कोई वैज्ञानिक प्राप्त नहीं कर सका।

जिस प्रकार "हैगफिश" की प्रजनन विधि ज्ञात नहीं हो सकी, उसी प्रकार वैज्ञानिक सर्वत्र पाए जाने वाले तिलचट्टे (काक्रोच) की आयु निर्धारित करने में असफल रहे हैं। अनुमान है कि करोड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी में डायनासौरस श्रेणी के जीवों का आविर्भाव हुआ, तब तिलचिट्टा पृथ्वी में विद्यमान था। इसकी संभावित आयु ३५ करोड़ वर्ष बताई जाती है। इतनी अवधि पार कर लेने पर भी, कठोर से कठोर और भयंकर से भयंकर प्राकृतिक परिवर्तन झेल लेने पर भी इसकी शारीरिक रचना में न तो कोई अंतर आया न विकास हुआ, तब फिर जीव-जगत् को नियमित और प्राकृतिक परिवर्तनों के अनुरूप विकास की संज्ञा कैसे दी जा सकती है ?

तेज से तेज गर्मी, वर्ष भर बर्फ जमी रहने वाले ग्लेशियर, पहाड़ और मैदान सब जगह यह तिलचट्टे पाए जाते हैं। महीने भर तक भोजन, पानी नहीं मिले, तो भी उसका काम चल सकता है। वह दो महीने तक केवल पानी पर उपवास करके दिखा सकता है कि भोजन शरीर की आवश्यकता नहीं। और तो और ५ महीने तक वह सूखा भोजन ही लेता रहकर यह सिद्ध कर देता है कि मनुष्य पानी के बिना भी शरीर धारण करने में समर्थ हो सकता है। यह सब चेतना के आंतरिक गुणों पर आधारित रहस्य हैं, जिन्हें केवल शारीरिक अध्ययन द्वारा नहीं जाना जा सकता, उसे समझने के लिए आत्म-चेतना के विज्ञान का एक नया अध्याय खोलना

आवश्यक है। यह अध्याय जीव के शरीर धारण की प्रक्रिया से संबंधित और आध्यात्मिक तथ्यों व तत्त्वदर्शन का अध्याय होगा, जिसके लिए हमारे पूर्वजों ने कठोर से कठोर तप किया था और उन सनातन सत्यों का प्रतिपादन किया था, जो धार्मिक विरासत के रूप में अभी भी हमारे पास विद्यमान हैं।

तिलचट्टे की भूख भी भयंकर होती है। आहार प्रारंभ कर देता है तो अपने अंडे-बच्चे भी नहीं छोड़ता। मादा अपने बच्चों से बड़ा स्नेह रखती है। प्रायः हर दो दिन में यह १ अंडा दे देती है। एक रूसी जीवशास्त्री ने एक बार पौने पाँच तिलचिट्टों के ऐसे शव ढूँढ़ निकाले, जो एक ही तिलचट्टे दंपति की संतान थे। नर काक्रोच बड़ा सफाई व सौंदर्य-पसंद जीव है। वह घंटों अपने शरीर और मूँछों की सफाई में लगाता और उन्हें सुंदर ढंग से सँवारता है। इसकी मूँछें लंबी होती हैं और एरियल का काम देती हैं। मूँछों की मदद से वह अँधेरे में भी अपना रास्ता आसानी से तय कर लेता है। विज्ञान के लिए यह खुली चुनौतियाँ हैं, आज जो खोजें मनुष्य ने कर ली हैं, प्रकृति उनका ज्ञान आदि काल से अपने गर्भ में छिपाए हुए है। सृष्टि के ये विलक्षण जीव प्रकृति की चेतना के ही परिणाम हैं। वह इस बात के साक्षी भी हैं कि प्रकृति एक "परिपूर्ण वैज्ञानिक" है। विज्ञान की पूर्ण शोध और जानकारी का लाभ किसी प्रकृतिस्थ को ही उपलब्ध हो सकता है।

तिलचट्टे की विलक्षणताएँ और भी हैं। उसके बच्चे सप्ताहों भूखे रह सकते हैं। वह स्वयं बर्फ की चट्टान में दब जाता है। बर्फ पिघलकर उधर निकलती है और यह इधर उठकर चल देता है। इसका बाहरी आवरण इतना कठोर होता है कि पाँव से दब जाने पर भी यह मरता नहीं है। दौड़ने में यह किसी सुंदर विमान से कम नहीं। यह सब गुण ही हैं, जिन्होंने वैज्ञानिकों का ध्यान इसकी शोध के लिए आकर्षित किया। पर बेचारे जीवशास्त्री उसकी इस

शारीरिक विलक्षणता पर ही उलझे रहे, मानसिक रहस्यमयता का एक भी पर्दा वे उघाड़ न सके।

अनेक अस्त्र-शस्त्र बनाकर मनुष्य ने अपनी बौद्धिक-चतुरता और दक्षता का परिचय दिया, पर हम नहीं जानते कि प्रकृति इस संबंध में कितनी धनवान् है ? उष्ण कटिबंधीय समुद्र में एक ट्रिगर फिश [वह मछली जिनके शरीर में काँटे होते हैं] पाई जाती है, इसका नाम है "हुमुहुमु-नुकुनुकु" जैसा विलक्षण नाम वैसा ही विलक्षण स्वयं भी। इसकी पूँछ, पीठ और सिर पर कुछ काँटे होते हैं, जिन्हें यह अपनी इच्छा और नाड़ियों के द्वारा जब चाहती है, तरेरकर सीधा और तीक्ष्ण कर देती है। फलस्वरूप किसी भी दुश्मन की इस पर घात नहीं लग पाती। इसके दाँतों की बनावट विचित्र होती है। दोनों जबड़ों में बाहर आठ-आठ दाँतों के अतिरिक्त ऊपर के जबड़े में एक प्लेट की शक्ल में ६ दाँतों की भीतरी पंक्ति भी होती है। ऐसा किस सुविधा के लिए है, यह वही जानती है, क्योंकि प्रकृति की कोई भी रचना निरर्थक नहीं भले ही मनुष्य सारगर्भित कल्पनाओं के स्थान पर वह क्रियाकलाप और रचनाएँ गढ़ता रहे, जो उसे लाभ पहुँचाने के स्थान पर हानिकारक होती हों।

प्रकृति में ऐसे अनेकों योगी सदृश जीव हैं, जो अपने ही मरे, कुचले टूटे-फूटे शरीर का अपने प्राणों के बल पर पुनः उपयोग कर लेते हैं।

जीवित स्पंज को लेकर टुकड़े-टुकड़े कर डालिए, उससे भी मन न भरे, तो उन्हें पीसकर कपड़े से छान लीजिए। पिसे और कूट-कपड़छन किए शारीरिक द्रव्य को पानी में डाल दीजिए। शरीर के सभी कोश धीरे-धीरे फिर एक स्थान पर मिल जाएँगे और कुछ दिन बाद पूरा नया स्पंज फ़िर से अपनी जीवन यात्रा प्रारंभ कर देगा। चुनौती है स्पंज की, कि जब तक प्राण हैं, तब तक मुझे शरीर के अवसान की कोई चिंता नहीं, मरना-जीना तो मात्र प्राणों का ही खेल है।

हाइड्रा, स्टेंटर तथा प्लेनेरिया आदि जीवों में यह गुण होता है कि वे अपने शरीर के एक छोटे-से अंश को (३००वें भाग तक छोटे टुकड़े को) ही तोड़कर नया शरीर बना देते हैं, उन्हें गर्भ धारण, भ्रूण विकास और प्रजनन जैसी परेशानियाँ उठानी नहीं पड़तीं। लगता है प्राण-तत्त्व की जानकारी होने के कारण ही प्राचीन भारत के तत्त्वदर्शी एक भ्रूण से १०० कौरव, घड़े से कुंभज और जंघा से उर्वशी पैदा कर दिया करते थे। अन्य एक कोशीय जीवों में पैरामीशियम तथा यूग्लीना में भी एक कोश से विभक्त होकर दूसरा स्वस्थ कोश अर्थात् नया जीव पैदा कर देने की क्षमता होती है। यह घटनाएँ इस बात की साक्षी हैं, कि ऐसी क्षमताएँ अणु जैसी सूक्ष्म मनःस्थिति तक पहुँचने वाली क्षमता से ही प्रादुर्भूत हो सकती हैं।

टूटे हुए शारीरिक अंगों के स्थान पर नए अंग पैदा कर लेने की क्षमता ही कुछ कम विलक्षण नहीं। ट्राइटन, सलामांडर, गोह अपने कटे हुए शरीर की क्षति-पूर्ति तुरंत नए अंग के विकास के रूप में कर लेते हैं। अमेरिका, अफ्रीका में पाए जाने वाले शीशे का साँप जरा-सा छूने से टूट जाता है, पर उसमें यह विशेषता होती है कि अपने टूटे हुए अंग को पुनः जोड़ लेता है। ऑइस्टर, शंबूक, घोंघा, समुद्री मकड़ी, मंथर आदि जीवों में भी यह गुण होते हैं। स्टारफिश के पेट में कोई जहरीला कीड़ा चला जाए, तो वह अपना पूरा पेट ही बाहर निकालकर फेंक देती है और नया पाचन-संस्थान तैयार कर लेती है। सलामेंसिनानेस, साहलिस तथा काटो गास्टर जीव तो स्पंज की तरह होते हैं, उन्हें कितना ही मार डालिए, मरना उनके लिए जबर्दस्ती प्राण निकाल देने के समान होता है, जहाँ दबाब समाप्त हुआ वह अपने प्राणों को फिर मरे-मराए शरीर पर प्रवेश कराके, जीवन यात्रा प्रारंभ कर देते हैं। इतना सब देखने पर भी वैज्ञानिकों की बुद्धि को क्या कहा जाए, जो यह कहते हैं कि

प्राण कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, वरन् मात्र एक रासायनिक चेतना है।

● न विकासवाद न आनुवंशिकता—

इस तरह की घटनाओं से सिद्ध होता है कि एक सार्वभौमिक सत्ता है, जो अपनी इच्छा से विलक्षण कौतुक उपस्थित करती रहती है। इन विलक्षणताओं का कोई भौतिक आधार नहीं होता, इसलिए उन्हें आध्यात्मिक ही कहना उपयुक्त लगता है। ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनका कोई भौतिक आधार नहीं वे मात्र किसी इच्छा शक्ति के ही चमत्कार प्रतीत होते हैं, जो स्वतंत्र बुद्धि के रूप में विराट् विश्व में क्रियाशील होते है—उसे ही परमात्मा कह सकते हैं।

इटली के एक ४३ वर्षीय गिवनी गैलेंट की आँखें उल्लू की आँखों जैसी थीं। सन् १६२८ में उसने अपने माता-पिता से मिलने हरमिन पा जाने के लिए बीसा के लिए आवेदन किया, उसे अस्वीकार करते हुए पब्लिक हैल्थ इन्स्पेक्टर ने कहा—आपको दिन के अंधेपन का रोग है, इसलिए यात्रा की अनुमति नहीं दी जा सकती। सचमुच ही वह केवल रात में ही देख सकता था, दिन में उसे कुछ दिखाई नहीं देता था। इस प्रकार उसने यह अमान्य कर दिया कि देखने के लिए प्रकाश आवश्यक होता है। उसने एक प्रकार से सिद्ध किया कि जीवन के सारे गुण उसकी सूक्ष्म चेतना में विद्यमान हैं, इसलिए उसे ही जानना और समझना चाहिए।

ये विचित्रताएँ किसी भी आनुवांशिक गुण (हेरेडिटी करेक्टर) पर आधारित नहीं होने से अधिक विस्मयपूर्ण हैं। जन्मांध हुआ, जन्म से एक आँख न रही हो, पर बिना आँखों के जन्म हुआ हो, ऐसा एक भी उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता। लेकिन फ्रांस में सबेलनासी आक्स में एक ऐसा लड़का भी जन्मा—जिसके एक भी आँख नहीं थी। आँखों का स्थान सपाट था और विज्ञान को चुनौती

दे रहा था कि यह किस आनुवंशिक गुण का प्रभाव है। उस लड़के के ६ और भी भाई-बहनें थी, जिनमें से किसी में भी इस तरह का कोई चिह्न नहीं था।

इससे भी विलक्षण था मोमिन्स का डब्ल्यू० जे० ब्रासर्ड। अभी तक विज्ञान का यही तर्क है कि स्त्री व पुरुष के गुण सूत्र (क्रोमोसोम) मिलकर ही शरीर की विविधता का निर्माण करते हैं। यह तो संभव है कि माता और पिता के वंशजों में किसी में नीली या भूरी आँखें रही हों और उसके फलस्वरूप कभी नीली आँखों वाली, तो कभी भूरी आँखों वाली संतानें पैदा होती रही हों, पर ब्रासर्ड इन सभी वैज्ञानिक मान्यताओं का अपवाद था। अर्थात् उसकी एक आँख तो नीली थी और एक भूरी। ऐसा किस कारण हुआ ? पता नहीं चल पाया, पर इतना स्पष्ट हो गया कि जिस प्रकार कोई आदमी कापी पर अपनी इच्छा से चित्र बनाया करता है, ठीक उसी तरह कोई एक सार्वभौमिक विचार शक्ति है, जो संसार की विचित्रताओं का नियमन और सृजन करती है।

आँख वालों की दुनिया के कुछ और आश्चर्य—भौंरे की आँखों का लेन्स ऐसा होता है कि वह पहले एक आकृति की हजार आकृतियाँ बनाकर भेजती है, पर दिखाई देती है अंत में वही एक की एक वस्तु। मक्खियों और तितलियों की आँखें भी ऐसी ही होती हैं। इस विचित्रता में संभवत एक शिक्षा यह है कि पंच-भौतिक पदार्थों से बनने वाले करोड़ों दृश्यों वाले इस संसार में मनुष्य को भूलना नहीं चाहिए, वरन् एक और अनादि तत्त्व को ही पकड़ना और प्राप्त करना चाहिए। यह तभी संभव है जब कुछ चार आँखों वाली समुद्री मछलियों के समान अपनी दृष्टि चौमुखी बनाएँ और आठ-आठ हाथों-पावों वाली स्क्वीड मछली की तरह अपने चारों तरफ के वातावरण के अध्ययन की सक्रियता दर्शाएँ। आँखों की इस अनौखी दुनियाँ में भेड़िया मकड़ी को भुलाया नहीं जा सकता, जिसके कि आठ आँखें होती हैं, इन आठों आँखों का उपयोग वह

अपने चारों तरफ के क्षेत्र की जाँच और अपने शिकार की टोह में करती है। शिकार को देखते ही वह उस पर टूट पड़ती है और खा जाती है। विवेकशील मनुष्य भी अपनी बुद्धि की आँखों से चारों तरफ देखकर निर्णय करते हैं, तभी वह संसार के दैन्य और दुर्भाग्य को जीतकर सफल और समर्थ कहलाते हैं।

आँख या शारीरिक अंगों का मिलना न मिलना कोई बड़े महत्त्व की बात नहीं। प्रसंग बताते हैं कि उसने संसार के हर कण को परिपूर्ण बनाया है। हमें उस मूल बिंदु को खोजने भर की आवश्यकता है। स्काटलैंड के इनवर्नस स्थान में ५ फरवरी, १८६६ को एक लड़का पैदा हुआ, नाम था विलियम मैकफर्सन, वह जन्मांध था। उसके हाथ भी नहीं थे फिर भी वह मून टाइप के उभरे हुए ठीक उसी तरह अक्षरों को अपनी जीभ की नोंक से पढ़ लेता था। अपने इस दुर्भाग्य के बावजूद भी वह अपने आपको दुनिया का सबसे अधिक सुखी व्यक्ति कहा करता था।

फ्रैंक फोर्ट में ग्रेटेल मेयर नामक ऐसी महिला थी, जिसके दो जीभें थीं। लगता है वे पूर्व जन्मों में बहुत बोलने वाली थी, तभी उन्हें भगवान् ने दो जीभें दीं, पर बोल सकना उनके लिए पूँजी के धन की भाँति दो जीभों से भी संभव न हुआ। कुमारी फैनी माइल्स अमेरिका के ओहियो प्रांत के विख्यात नगर सिनसिनाटी में १८८० में जन्मीं, उनके पैर के पंजे २-२ फीट लंबे थे, जबकि शरीर सामान्य था। यह विचित्रता यह संकेत देती थी कि मनुष्य कोई स्वतंत्र इकाई न होकर इतर प्राणियों का सजातीय है। ऐसा न होता तो वह आनुवंशिक गुण मनुष्य में कहाँ आ जाते ? ऐसी घटनाएँ ही जीवन के अन्य योनियों में भ्रमण और पुनर्जन्म का भी प्रमाण हैं, उनको ठुकराया जाना संभव नहीं है।

कई बार की विचित्रताएँ तो और भी आश्चर्यजनक होती हैं और वह बताती हैं कि संसार किसी बहुत ही कौतुकी सत्ता का खेल है। जार्जिया के ग्रीनविले नगर में ए० एफ० डाडी नामक एक

स्त्री को प्रसव के समय अंडा देते समय लोग चौंके। कुछ दिन तक यह प्रतीक्षा की जाती रही कि अंडा फूटेगा और बच्चा निकलेगा, किंतु जब अंडा न हिला न डुला, तो उसे फोड़ा गया, भीतर से निकला एक मूँगफली का दाना। कुछ लोग इस घटना पर हँसे, पर अधिकांश यह सोचते रह गए कि यह किस विकासवाद की बला है।

शिकागो (अमेरिका) में जान० टी० बोवर्स के वायु नली नहीं थी, स्वर तंत्री तथा कंठ पिटक आदि कुछ भी नहीं थे, फिर भी वह सामान्य व्यक्तियों की भाँति ही अपनी जीभ से बोला और उच्चारण करता था। यह सारी घटनाएँ यदा-कदा और कहीं एक आध व्यक्तियों के साथ घटित होती हैं। स्पेन में करवेरा डी ब्रुट्रेगा नामक एक गाँव में सभी व्यक्तियों के हाथ तथा पैरों में कई-कई अँगुलियाँ हैं। ६ अँगुलियाँ तो सभी के हैं, केवल एक बुड्ढा ही ऐसा है, जिसके १०-१० उँगलियाँ हाथ-पैरों में हैं। यह लोग संसार के सामान्य लोगों को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते हैं।

लिसे नमडीयर (आयरलैंड) की घटना है। वहाँ की एक महिला बिद्दी कैशल्स एक ऐसी स्त्री थी, जिसने अपने गर्भ से एक बार दो-चार नहीं पूरे १०० मुर्गी के अंडे दिए। मातृ भावनावश कहें अथवा किन्हीं पूर्वजन्मों के संस्कार, जिस तरह मुर्गी अपने अंडों के ऊपर बैठकर, उन्हें बच्चे न निकलने तक सेती रहती है। बिद्दी कैशल्स भी लगातार एक घोंसला बनाकर और अंडे उसमें सुरक्षित रखकर तीन सप्ताह तक बैठी रही। तीन सप्ताह बाद उन अंडों से १०० मुर्गी के बच्चे पैदा हुए।

मनुष्यों और जीव-जंतुओं में दृष्टिगोचर होने वाली ये विचित्र विलक्षणताएँ सिद्ध करती हैं कि जीवन का विकास और स्वरूप किन्हीं सद्नियमों के अनुसार नहीं होता। जीवों की यह तरह-तरह की आकृति और प्रकृति देखते-देखते शास्त्रकार की जैविक व्याख्या अनायास ही याद आ जाती है—

अनारतं प्रतिदिशं देशे-देशे जले स्थले।
जायंते वा म्रियंते वा बुदबुदा इव वारिणि।।

—योगवाशिष्ठ ४/४३/४

एवं जीवाश्चितो भावा भवभावनयोहिताः।
ब्रह्मणः कल्पिताकाराल्लक्षशोऽप्यथ कोटिशः।।
असंख्याताः पुरा जाता जायंते चापि वाद्य भोः।
उत्पतिष्यन्ति चैवाम्बुकणौघा इव निर्झरात्।।

—योगवाशिष्ठ ४/४३/१-२

हे राम ! जिस प्रकार जल में अनेक बुलबुले बनते और बिगड़ते रहते हैं, उसी प्रकार सब देश और सभी कालों में यह चेतना ही अनेक जीवों के रूपों में उत्पन्न और नष्ट होती रहती है। यह सब चित्त के रूपांतर का फल है। जीव अपनी इच्छा और कल्पना के द्वारा लाखों और करोड़ों की संख्या में तीनों कालों में उत्पन्न होते रहते हैं—जैसे झरने के जल कण।

भारतीय दर्शन की यह मान्यताएँ कितनी सत्य और स्पष्ट हैं ? उसे समझने के लिए भगवान् ने मनुष्य शरीर जैसा एक परिपूर्ण यंत्र बनाया है। इसमें भरी चेतना भी एक क्षुद्र जीव ही है, जो बौद्धिक विकास के कारण इस स्थिति में है कि अपनी यथार्थ अवस्था का ज्ञान, अनुभव और साक्षात्कार कर सकता है और ८४ लाख योनियों में भ्रमण कराने वाली इच्छाओं-वासनाओं को जीत कर विराट् आत्मा, ब्रह्म और परम पद तक की प्राप्ति कर सकता है।

❐ ❐

प्रत्यक्ष से भी विचित्र अदृश्य संसार

*

पुनर्जन्म के संबंध में यों तो अनेकों घटनाएँ सामने आती हैं। अखबारों में छपती रहती हैं। पूर्वजन्म की स्मृति आना और बोलना सीखते ही पिछले जन्म के घर, पत्नी-बच्चों, रिश्तेदारों के संबंध में बताने, उन्हें पहचानने और कोई राज की बात—जिसे अकेला वही व्यक्ति या एकाध अन्य सदस्य और जानते थे, बताने की घटनाएँ इतनी आम हो चुकी हैं कि नई चर्चा उठते ही उसी जैसी दो-चार और घटनाओं की भी चर्चा होने लगती है।

इन घटनाओं के संबंध में जो विवरण प्राप्त हुए, उनके आधार पर जाँच-पड़ताल से जो तथ्य सामने आए—उन्होंने पुनर्जन्म और परलोक के भारतीय सिद्धांत की पुष्टि करते हुए यह भी प्रमाणित कर दिया है कि मरने के बाद शरीर तो छूट जाता है, पर मनुष्य की चेतना जीवित ही रहती है। लेकिन अभी कुछ समय पूर्व विश्वविख्यात ब्रिटिश परा मनोवैज्ञानिक जे० बर्नार्ड हटन ने कुछ ऐसी घटनाओं पर शोध किया, जो यह सिद्ध करती हैं कि व्यक्ति ही नहीं, घटनाओं का भी पुनर्जन्म होता है। इस विषय को इन्होंने अपने पुस्तक 'द अदर साइड आफ रियेलिटी' (यथार्थ का दूसरा पक्ष) में प्रमाणों और तथ्यों के आधार पर प्रतिपादित किया है।

जे० बर्नार्ड हटन द्वारा उल्लिखित जो घटना सर्वाधिक चर्चित है—उसके कई साक्षी आज भी जीवित हैं, जिन्होंने उसे देखा है हटन की भाँति। हटन ने इस घटना का साक्षात् किया था सन् १९२३ में। उस समय वे बच्चे ही थे। उनके पिता किसी सरकारी विभाग में अच्छे पद पर थे और समय-समय पर पूरा परिवार छुट्टियों का आनंद लेने के लिए किसी एकांत स्थल पर जाया करता था। उस वर्ष हटन परिवार सिल्ट द्वीप पर अपनी छुट्टियाँ

मना रहा था। यह द्वीप चारों ओर से समुद्र से घिरा तथा सुंदर रम्य प्रकृति की गोदी में बना हुआ है।

हटन के साथ उनके एक मित्र जो सेना में कैप्टन थे—शुलकौझ भी द्वीप पर छुट्टियाँ मनाने के लिए सपरिवार आए हुए थे। दोनों मित्रों ने पास-पास रहने का फैसला किया और एक ही स्थान पर बंगले किराए पर लिए। अभी छुट्टियाँ बीत भी न पाई थीं कि हटन को किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ा। श्रीमती हटन और उनके बच्चों के साथ कैप्टन-शुलकौझ का परिवार भी श्री हटन को विदा करने स्टेशन तक गया। विदा कर लौटते हुए सबने पूरे द्वीप का घूमते हुए चक्कर लगाकर अपने बंगलों पर वापस लौटने का निश्चय किया। इस प्रकार उन्हें छोटे-से सिल्टद्वीप की चार मील की परिधि भर का चक्कर लगाना पड़ा। अतएव वे स्टेशन से बंगलों के लिए पैदा ही रवाना हुए।

सब घूमते हुए चले जा रहे थे। घूमते-घूमते वे एक ऐसे स्थान पर जा रुके जहाँ खाड़ी-सी बन गयी थी। रुकने का कारण था खाड़ी में उठने वाला एक तेज ज्वार और उसमें फँसी मल्लाहों की एक नाव, जिसमें करीब १५-२० मछुए बैठे थे और सबके चेहरों पर मौत का भय छाया हुआ था। इस समय देखकर आश्चर्य इस बात पर अधिक होता था कि जिस क्षेत्र में ज्वार के बीच नाव फँसी हुई थी, वहाँ तो प्रचंड लहरें उठ रही थीं, जैसे सागर किश्ती पर ही अपना सारा क्रोध उतारने के लिए बेताब हो रहा हो, पर उस क्षेत्र के आस-पास का समुद्र बिल्कुल शांत था।

थोड़ी देर में कुछ मछुए पास के गाँव से आ गए और उन्होंने तोप द्वारा लाइफ लाइन फेंकी, ताकि उसे पकड़कर फँसे हुए मछुए अपनी जीवन रक्षा कर लें। लेकिन वह लाइफ लाइन नाव तक ही नहीं पहुँची। दुबारा लाइफ लाइन फेंकी गयी। इस बार पूरी सतर्कता रखी गयी थी। इसलिए लाइफ लाइन ठीक नाव तक पहुँच गयी।

नाव में बैठे मछुए उसे अब पकड़ें तब पकड़ें, इतने में ही एक लहर ऊँची उठी और उसने लाइफ लाइन को लपक लिया।

तोप की आवाज सुनकर पास की बस्ती से बहुत सारे लोग जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी थे, समुद्र के तट पर आ गए। अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी। कुछ स्त्रियाँ विलाप भी करने लगीं। संभवतः उस नाव में उनके पति, पुत्र या संबंधी होंगे। दो बार लाइफ लाइन फेंकने की कोशिश बेकार गयी, तो तोप दागने वाले मछेरों ने किनारे से एक नाव उतारी, जिसमें चार-पाँच हृष्ट-पुष्ट और ताकतवर व्यक्ति बैठे थे, वे सफलतापूर्वक नाव को खेते हुए उस ओर ले गए जहाँ कि उनके साथी फँसे हुए थे।

लहरों से संघर्ष करते हुए वे अपनी साथियों की ओर बढ़ने लगे। किनारे से रवाना हुई नाव उन तक पहुँच ही गयी थी। तट पर खड़े कुछ मछेरों ने फिर लाइफ लाइन फेंकी, पर वह भी लहरों की चपेट में आ गयी। जीवन और मृत्यु के इस संघर्ष को देखकर, किनारे पर खड़े व्यक्ति परमात्मा से दया की प्रार्थना कर रहे थे। लाइफ बोट को सहारा देकर दुर्घटना में फँसे मछेरों को किनारे पर लाने की कोशिश की ही जा रही थी कि एक तेज लहर आयी, जिसने आकाश की ऊँचाइयों को छूते हुए दोनों नावों और उनके सवार मछेरों को सागर की तलहटी में पहुँचा दिया।

इस दृश्य के समय बड़ा कारुणिक वातावरण बन गया था। स्वयं शुलकौझ, उनके साथी, बच्चों व अपनी तथा अपने मित्र की पत्नियों को कुछ समझ नही आ रहा था। एक-दूसरे से आश्चर्य व्यक्त करते हुए उन्होंने आस-पास देखा, तो न कोई भीड़ थी और न ही सागर में तूफान आया हुआ था। एकदम शांत समुद्र भी जैसे उस घटना को झुठला रहा था।

घटना अविश्वसनीय लगती है। परंतु है सच। यह बात तब प्रमाणित हुई, जब कैप्टन ने अपने घर जाकर द्वीप के पादरी से इसकी चर्चा की। पादरी ने और भी आश्चर्य में डाल दिया कि अब

से पचास वर्ष पूर्व जब वह बच्चा ही था। सचमुच ही ऐसी घटना घट चुकी है। दिन यही था जिस दिन शुलकौझ ने यह दृश्य देखा था। यही नहीं पादरी ने उन लोगों के बयान भी दिखाए, जो पहले इस घटना की पुनरावृत्ति को देख चुके थे। कैप्टन शुलकौझ ने उन बयानों को पढ़ा, तो अनुभव हुआ कि जैसे अभी-अभी कोई व्यक्ति यह घटना देखकर आया है और अपने संस्मरण लिख रहा है।

उस समय बच्चे रहे बर्नार्ड—हटन इस अविश्वसनीय सच्चाई से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसी दिशा में खोज करना अपना लक्ष्य बना लिया और परा मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक से एक अद्‌भुत प्रयोग किए तथा उनके निष्कर्षों ने लोगों को अचंभित कर दिया, क्योंकि आज का बुद्धिजीवी वर्ग इस प्रकार की बातों को बिना कुछ समझने का प्रयत्न किए, तत्काल कपोल-कल्पना या गप्प करार दे देता है।

पश्चिमी देशों में मरणोत्तर जीवन की स्थिति पर शोध और प्रयोग के बड़े कार्य होने लगे हैं। सर ओलीवर लाज, सर विलियम बारेट, एफ० डब्ल्यू० एच० मारेस, रिचार्ड होडसन, मिसेज सिडपिक, सर आर्थरकानन डायल आदि परा मनोवैज्ञानिकों ने इस दिशा में गंभीर खोजें की हैं और प्रामाणिक तथा तथ्यपूर्ण जानकारियाँ संग्रहीत कर अध्यात्म को भी विज्ञान की कसौटी पर कसा है।

उक्त प्रकार की घटना के ही समान प्रख्यात परा मनोवैज्ञानिक ए० पी० सीनेट ने भी ऐसा ही एक चौंका देने वाला अनुभव लिखा है। सीनेट एक बार झील के किनारे चहलकदमी कर रहे थे। यकायक उन्हें लगा कि कोई युवती आत्मघात के उद्देश्य से झील में कूदने जा रही है। उन्होंने युवती को देखा और उसे पकड़ने के लिए दौड़े, ताकि उसे आत्मघात से बचाया जा सके, पर इसके पहले ही लड़की पानी में कूद चुकी थी। छपाक की आवाज हुई और सीनेट लोगों को उसे निकालने के लिए पुकारने लगे। लोग

आए, उन्होंने झील में लड़की का मूर्च्छित शरीर या शव निकालने के लिए काफी देर तक डुबकियाँ लगायीं। बाद में पुलिस को रिपोर्ट की गई, पर यह जानकर आश्चर्य हुआ कि प्रति वर्ष इसी दिन और इसी समय आत्म-हत्या की रिपोर्ट दर्ज करायी जाती है। पिछली पंद्रह-सोलह साल की फाइलों में एक-सी रिपोर्ट, आत्म-हंता लड़की का एक-सा हुलिया और एक से कपड़े बताए जाते हैं।

सीनेट ने यह क्रम कब से शुरू होता है—यह बताने का आग्रह किया, तो पता चला कि सोलह साल पहले इसी हुलिया की लड़की ने आत्महत्या की थी। उसके परिवार वालों ने इसके शव को ढूँढ़ा और निकाला था। इस प्रकार घटनाओं की पुनरावृत्ति का कारण बताते हुए, 'टेकनीक्स आफ एस्ट्रल प्रोजेक्शन', 'सुप्रीम एडवेंचर' तथा 'मोरल एस्ट्रल प्रोजेक्शन' जैसी विश्वविख्यात पुस्तकों के लेखक राबर्ट कूकल ने लिखा है कि, मृत्यु चाहे दुर्घटना में हुई हो या आत्मघात द्वारा। मरने वालों का सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल-बाडी) तुरंत यह अनुभव करने में असमर्थ होता है कि वह मर रहा है। किसी तालाब में ढेला फेंकने के बाद जिस प्रकार बहुत देर तक तरंगें उठती रहती हैं, उसी प्रकार मृतक व्यक्ति का सूक्ष्म शरीर भी उन घटनाओं की मूर्च्छा की दशा में पुनरावृत्ति करता है। ए० पी० सीनेट द्वारा उल्लखित इस घटना का यही कारण है।

राबर्ट कूकल ने अपनी पुस्तकों में ऐसे बहुत-से तथ्य संग्रहित किए हैं, जो उन्होंने मृतात्माओं से प्रत्यक्ष वार्तालाप, संपर्क, खोजबीन और प्रयोगों के आधार पर खोजे हैं। उनके निष्कर्ष भारतीय तत्त्वज्ञान को ही पुष्ट करते हैं, जो यह मानता है कि मृत्यु केवल स्थूल शरीर की होती है। प्राणी के साथ उसका सूक्ष्म शरीर, इच्छाएँ, वासनाएँ, आकांक्षाएँ साथ ही जुड़ी रहती हैं, जो उसे पारलौकिक जीवन में ही नहीं दूसरे जन्मों में भी नियंत्रित और प्रभावित करती हैं। मोह और अतृप्त वासनाओं के संबंध में कूकल ने लिखा है—"जो लोग मोह के वशीभूत होते हैं तथा जिनके जीवन

में अतृप्त वासनाएँ घर किए रहती हैं, उनकी एस्ट्रल बाडी पूर्णरूप से ईथर से मुक्त नहीं होती। उनके लिए सारा वातावरण धूमिल, अंधकारपूर्ण और भयावह रहता है।" इसे ही भारतीय धर्मशास्त्रों ने अपनी अलंकारिक भाषा में नरक कहा है।

अंत में जे० बर्नार्ड हटन द्वारा देखी गई एक अनोखी घटना के पुनर्जन्म का भी स्पष्टीकरण किया है, जिसका कारण बताते हुए उन्होंने लिखा है—"भय और आसक्ति समान रूप से मनुष्य के सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करते हैं। आकस्मिक दुर्घटनाओं में तो इसलिए और भी ज्यादा कि बहुत काल तक मृत्यु का ही भान नहीं होता और अपने शरीर से बँधा हुआ, उसका लगाव उसे पुनः-पुनः संघर्षों की ओर धकेलता है।"

इस प्रकार की घटनाओं से पुनर्जन्म का पूर्ण स्पष्टीकरण तो गहन प्रवेश की क्षमता या इस दशा में की जाने वाली खोजों द्वारा ही हो सकता है। बहरहाल वैज्ञानिकों के लिए यह गुत्थी आज भी उलझी हुई है कि उस घटना की प्रतिवर्ष उसी दिन किस प्रकार पुनरावृत्ति होती रही है ?

● रोती हुई प्रतिमा—

२६ अगस्त १६५३ को अभी बहुत दिन नहीं हुए, जबकि सराक्यूज अमेरिका में एक पत्थर की मूर्ति (प्लास्टर आफ पेरिस) की आँखों से आँसू निकल पड़े और कई दिन तक आँसुओं का प्रवाह रुका नहीं। वैज्ञानिक आधार पर इन आँसुओं का विश्लेषण किया गया तो यह पाया गया कि, मूर्ति की आँखों से स्रवित आँसुओं और मनुष्य के आँसुओं में कोई अंतर नहीं है। इस घटना का आँखों देखा सत्य विवरण और उसके अद्‌भुत प्रभावों का प्रमाणसहित वर्णन डच विद्वान फादर ए० सोमर्स एस० एम० एम० ने अच्छी प्रकार स्वयं मूर्ति का परीक्षण करके लिखा। फादर एच० जोंगेन ने उसका अनुवाद कर विश्व केशेष भागों तक पहुँचाया, इस

घटना से एक बार सारे अमेरिका में हलचल मच गई। सैकड़ों आदमियों ने मूर्ति के आँसुओं का परीक्षण किया। हजारों ने उसके दर्शन किए, लाखों नास्तिकों को भी अपना विश्वास परिवर्तित करने को विवश होना पड़ा।

घटना का पूर्वारंभ २१ मार्च १९५३ को हुआ। उस दिन सराक्यूज में कुमारी एंटोनियेटा और श्री एग्लो जेन्यूसो का पाणिग्रहण संस्कार था। उस पुण्य तिथि पर मित्रों, अभ्यागतों ने अनेक उपहार दिए। उन सामग्रियों में जो एंटोनियेटा को उपहार में मिली, मीरा के गिरधर गोपाल की मूर्ति की तरह, एक छोटी-सी प्रतिमा भी थी, जो जेन्यूसो के भाई और भाभी ने भेंट दी थी। २ इंच की यह छोटी-सी मूर्ति प्लास्टर की बनी हुई थी, अंदर से खोखली और ऊपर पालिस (एनामेल) की हुई थी। एंटोनियेटा को यह मूर्ति बड़ी प्यारी लगी। भावना ही तो है, जिस वस्तु पर आरोपित हो जाती है, खराब से खराब मिट्टी की वस्तु भी हीरे जैसी बन जाती है। भावनाओं की शक्ति का कोई पारावार नहीं। भावनाएँ ही खींचकर लाती थीं और निर्जन एकांत में मीरा को और भगवान् साकार रूप में उनके साथ नृत्य करने लगता था। एंटोनियेटा की भावनाओं के कारण वह मूर्ति साधारण प्रतिमा न होकर उसकी इष्टदेवी (मैडेना) बन गई। उसने उसे पलंग के सिरहाने लगा लिया। जिस तरह बालक किसी कष्ट या पीड़ा में माँ को भावनाओं का बल देकर पुकारता है और माँ हजार काम छोड़कर भागी हुई चली आती है। उसी प्रकार एंटोनियेटा जब भी कभी दुःखी होती, अपनी साथिन मूर्ति से भावनात्मक वार्तालाप करती, उससे उसे बड़ा संतोष मिलता।

धीरे-धीरे एंटोनियेटा गर्भवती हुई। गर्भ जैसे-जैसे बढ़ता गया वैसे-वैसे एंटोनियेटा का शारीरिक कष्ट जाने क्यों बढ़ने लगा ? वह सूखकर कांटा हो गई, आँखें धँस गई और एक दिन दिखाई देना

भी बंद हो गया। जुबान ने बोलने से भी इनकार कर दिया। मिरगी के से दौरे आते और वह एंटोनियेटा मृत तुल्य हो जाती।

डाक्टरी जाँच की गई। डाक्टरों ने बताया भ्रूण में जहर बढ़ रहा है। डॉक्टर कोई निदान न ढूँढ़ पा रहे थे। एंटोनियेटा पीड़ित दशा में अपलक उसी मैडेना की मूर्ति को निहारे जा रही थीं, मानों उसे कोई शिकायत हो—हे प्रभु ! यदि तेरी सृष्टि मंगलमय है, तूने प्यार से मनुष्य को बनाया है, तो क्या तेरे लिए यह उचित है कि अपने ही बंदों को इतना कष्ट दे ?

२६ अगस्त, १६५३ को तीव्र दौरा आया, तब एंटोनियेटा का कष्ट असह्य हो उठा। ७ बजे जेन्यूसो को अपनी ड्यूटी पर विवश होकर जाना पड़ा। पंलग पर पड़ी एंटोनियेटा अकेले तड़फड़ाकर उसी मूर्ति से अपनी भावना भरी वही प्रश्न मूलक दृष्टि डाले थी, उसी क्षण मूर्ति की आँखों से आँसू ढलके, एंटोनियेटा को विश्वास नहीं हुआ—क्या यह सचमुच आँसू हैं या वह कोई स्वप्न देख रही है। उसने अपना सब कुछ निरीक्षण किया और पाया कि वह कोई स्वप्नावस्था में नहीं देख रही वरन् सचमुच ही मूर्ति की आँखों से आँसू ढुलक रहे हैं।

कई दिन बाद आज पहली चीख सुनी गई। एंटोनियेटा चिल्लाई—मेडेना रो रही है। तब पड़ौस की दो और स्त्रियाँ आईं और उन्होंने भी सचमुच मेडेना को रोते हुए पाया। दोनों महिलाओं ने मूर्ति के सामने घुटने टेककर प्रार्थना की और फिर बाहर निकल गईं। देखते-देखते सारे मुहल्ले में खबर दौड़ गई, जिसने सुना वही भागा, मूर्ति उपहार में देने वाली जेन्यूसो की भाभी ने भी आकर देखा, तब तक मूर्ति के इतने आँसू निकल चुके थे, जिससे सिरहाने का बिस्तर काफी भीग चुका था।

प्रारंभ में लड़कियाँ और स्त्रियाँ ही यह दृश्य देखने दौड़ीं। कुछ लड़के भी आए, पड़ौस में एक सिपाही की धर्मपत्नी ने यह दृश्य देखा और अपने पति को बताया कि वाया डेगली ओरटी में

एंटोनियेटा की मेडेना की आँखों से आँसू झर रहे हैं। सिपाही ने जाकर सारी घटना पुलिस को सुनाई, इस बीच घर स्त्रियों से भर गया था। कई स्त्रियाँ प्रार्थनाएँ कर रही थीं और मूर्ति थी कि उसकी आँखों से बरसने वाले अश्रु-कण कम न होते थे।

उसी दिन दोपहर को डॉ० मारियो मेसीना, जो वाइआ कारसो में रहते थे, स्वयं घटना का निरीक्षण करने पहुँचे। उन्होंने जाकर मूर्ति को उठा लिया। दीवार जहाँ वह टंगी थी, उसे अच्छी तरह देखा, कहीं कुछ भी गीला या पानी की बूँद वहाँ नहीं थीं। मूर्ति की छाती, पेट भी सूखा था। वह जो ताज पहने थी, उसे भी हटाकर साफ कर दिया। अच्छी तरह जब झाड़-पोंछकर मूर्ति को पुनः रखा गया, तो आँसुओं की वही प्रवाह अविरल गति से पुनः बह निकला।

डॉ० मारियो उस समय भावातिरेक चिल्ला उठे मेडेना सचमुच रो रही है। उन्होंने बाहर आकर सैकड़ों लोगों को बताया—

अंततः वैज्ञानिक हैरान ही रहे कि जब तक एंटोनियेटा को अत्यधिक पीड़ा रही, मूर्ति क्यों रोती रही और डाक्टरी सहायता के बावजूद भी जो अच्छी न हुई थी, वह कैसे अच्छी हुई और उस असहाय का कष्ट दूर होते ही मूर्ति के आँसू क्यों बंद हो गए ? इसका कोई निश्चित निष्कर्ष वे न निकाल सके, पर उन्होंने यह अवश्य स्वीकार किया कि इस विज्ञान से भी बढ़कर कोई भावनाओं का विज्ञान अवश्य है।

सराक्यूज की रोने वाली मूर्ति का रहस्य अभी तक अमरीकी वैज्ञानिक खोज नहीं पाए, यहाँ प्रस्तुत है यूरेक्थम के प्रसिद्ध मंदिर का ऐतिहासिक वर्णन, जो सराक्यूज की रोने वाली मूर्ति से भी बढ़कर आश्चर्यजनक है। यह मंदिर ग्रीक की राजधानी एक्रोपोलिस में स्थित है। बात उस समय की है, जब थामस ब्रूस एल्गिन सन् १७९९ में तुर्की में ब्रिटिश राजदूत थे। तुर्की के अधिकारियों से उन्होंने इस मंदिर को तोड़कर, उसकी मूर्तियाँ इंग्लैंड ले जाने की

आज्ञा प्राप्त कर ली। मंदिर गिराने के लिए मजदूरों का एक जत्था रात में कार्य पर लगाया गया। एक्रोपोलिस निवासियों को इस बात का पता चला तो वे अपने सारे काम छोड़कर भगवान् से प्रार्थना करने के लिए बैठ गए। इसी समय एक यह अविस्मरणीय घटना घटित हुई। अभी बाहर की चहारदीवारी ही हट पाई थी जैसे ही मजदूरों ने मूर्ति को तोड़कर हटाया, एक भयंकर चीख सुनाई दी उसके अंदर से। कई मजदूर भयभीत होकर गिर पड़े और उनका रक्त तक जम गया।

कहते हैं कि भारी हथौड़े से पिस्टन में पूरी शक्ति लगाकर चोट मारी जाए और पिस्टन को स्वेच्छापूर्वक पीछे उछलने दिया जाए, तो सिलेंडर में रखा हुआ सारा पानी जमकर बर्फ हो जायेगा। यदि उस बर्फ पर एक जलता हुआ लोहे का टुकड़ा रखकर, उस पर उसी हथौड़े की पूरी शक्ति लगाकर चोट की जाए, तो वही बर्फ पानी हो जायेगी और फिर पानी ही न रहेगी वरन् उबलकर हाइड्रोजन व आक्सीजन गैसों में बदलकर, इतना भयंकर विस्फोट करेगा कि वह लोहा भी पिघलकर गैस बनकर उड़ जायेगा। मजदूरों के शरीर का खून जम जाना इस सिद्धांत की याद दिलाता है और यह बताता है कि वह चीख भारी हथौड़े की मार से भी भयंकर रही होगी। फिर मजदूर उस मूर्ति के अतिरिक्त दूसरी मूर्ति नहीं तोड़ सके। कहते हैं जिस खंभे पर मूर्ति रखी थी, वह इस प्रकार बना था कि मूर्ति हटते ही चारों ओर से हवा एकदम खिंची, उसी से विस्फोट हुआ, पर वैज्ञानिक इस बात को मानते नहीं। यदि ऐसा होता तो गर्मियों में उठने वाले बवंडर (साइक्लोन) से भी भयंकर ध्वनियाँ होती, जबकि ऐसा कहीं सुना नहीं गया। यह मूर्ति आज भी ब्रिटिश—म्यूजियम में रखी है और 'यूरेक्थम के रहस्य' के नाम से यह आवाज भी रहस्यमय बनी हुई है। उसका कोई वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं हो पाया।

इन चमत्कारिक घटनाओं के पहिले कौन-से कारण विद्यमान हैं, विज्ञान अभी तक इसका पता नहीं लगा सका है। वस्तुतः विज्ञान प्रकृति के नियम को समझाकर उनसे लाभ उठा ही नहीं पा रहा है। अब तक जितने भी उपकरण, यंत्र और साधन बने, विकसित हुए हैं, वे सभी प्रकृति की ही नकल हैं। एक कुतुबनुमा जैसी छोटी-सी मशीन भी भगवान् की उँगलियों से बने, कुतुबनुमा पौध की नकल किए बिना मनुष्य बना नहीं सका। इस वृक्ष को कुतुबनुमा इसलिए कहते हैं कि इसकी पत्तियाँ हमेशा उत्तर दक्षिण की ओर घूमती रहती हैं। दुनिया भर की सारी मशीनें शरीर रचना का आधार हैं अथवा प्रकृति के किसी भाग का अनुकरण, फिर विज्ञान को किस आधार पर सर्वोपरि और सर्व प्रधान समझा जाए ? सृष्टि में श्रेष्ठतम बुद्धि की अधिष्ठात्री तो कोई और भी शक्ति है, जिसका नियंत्रण सारे विश्व ब्रह्मांड में है।

❐ ❐

विकासवाद—अधूरी और एकांकी मान्यता

*

विकासवाद का प्रचलित सिद्धांत हमें यह सिखाना चाहता है कि जीव का मूल स्वरूप ही नहीं, स्तर-स्वभाव और आधार भी विकसित तथा परिवर्तित होता चला आया है। एक कोषीय, इंद्रिय चेतना से रहित जीवन क्रम उलट-पुलट करते-करते मनुष्य जैसे विकसित प्राणियों की स्थिति में आ धमका है। विकास का यह सिद्धांत बहुचर्चित और बहुप्रचलित है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हीक्सस भी विकासवाद के सिद्धांत के समर्थकों में आते हैं।

वे भी यह मानते हैं कि मनुष्य शरीर का विकास एक कोषीय जीव (प्रोटोजोन्स) से हुआ। पहले अमीबा, अमीबा से स्पंज, स्पंज से हाइड्रस फिर जेलीफिश मछली, मेंढक, साँप, छिपकली, चिड़िया, घोड़े आदि से विकसित होता हुआ आदमी बना। इसके लिए (१) जीवों के मिले अवशेषों, (२) विभिन्न प्राणियों की शारीरिक बनावट के तुलनात्मक अध्ययन, (३) थ्योरी आफ यूज एंड डिसयूज के उदाहरणों से यह सिद्ध किया जाता है कि मनुष्य शरीर विकसित हुआ है। थ्योरी ऑफ डिसयूज का अर्थ है कि जिस अंग का प्रयोग न किया जाए, वह घिसता और नष्ट होता चला जाता है, उदाहरण के लिए पहले मनुष्य पेड़ों पर रहता था। उछलकर चढ़ने के लिए पूँछ आवश्यक होती है। तब मनुष्य को पूँछ थी, यह इसका निशान 'टेल वरटिब्री' के रूप में अभी भी शरीर में है। पर जब मनुष्य पृथ्वी पर रहने लगा, पेड़ों पर चढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ी, तो पूँछ का प्रयोग भी बंद होता गया और वह अपने आप घिस गई।

किंतु एक शरीर से दूसरे शरीर के विकास का समय इतना लंबा है कि उन परिवर्तनों को सही मान लेना बुद्धिसंगत नहीं जान पड़ता। प्रकृति के परमाणुओं में भी ऐसी व्यवस्था नहीं है कि एक

बीज से दूसरे बीज वाला पदार्थ पैदा किया जा सके, भले ही उसके लिए भिन्न प्रकार की जलवायु प्रदान की जाए। जलवायु के अंतर से फल के रंग, आकार में तो अंतर आ सकता है, पर बीज के गुणों का सर्वथा अभाव नहीं हो सकता।

"सेल फिजियोलाजी ग्रोथ एंड डेवलपमेंट्स" विभाग कार्नेल यूनिवर्सिटी के डाइरेक्टर डॉ० एफ० सी० स्टीवर्ड ने एक प्रयोग किया। उन्होंने एक गाजर काटी। उसका विश्लेषण करके पाया कि वह असंख्य कोशिकाओं (सेल्स) का बना हुआ है। इन सभी कोशिकाओं के गुण समान थे। कुछ कोशिकाएँ निकालकर काँच की नलियों में रखीं और उनमें नारियल का पानी भर दिया। एक कोशिका के और टुकड़े नहीं किए जा सकते, पर नारियल का पानी पाते ही गाजर की कोशिकाएँ १ से २, २ से ४, ४ से ८ के क्रम में बढ़ने लगीं और अंत में प्रत्येक कोष एक स्वतंत्र गाजर का पौधा बन गया। इससे कोषों के भीतर अपनी जाति के नए कोषों को बना सकने की शक्ति का पता चलता है, पर नई जाति का कोष वे नहीं बना सकते।

"यह एक अलौकिक प्रसंग है, जबकि न तो आँखें धोखा दे रही हैं और न बुद्धि साथ। विज्ञान उसका कोई उत्तर नहीं दे सकता है, हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। यही कह सकते हैं कि भगवान् की माया सचमुच विलक्षण है।"

सर्वप्रथम हमें विकासवादी सिद्धांत की कुछ मुख्य स्थापनाओं का अवलोकन करना होगा। इसके अनुसार लगभग १० लाख वर्ष पूर्व "आस्ट्रेलो पिथेकस" नामक वनमानुष विकसित हुआ। जब पहला विशाल ग्लेशियर दक्षिण की ओर सरका तथा यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका के बड़े हिस्से को ढक लिया, उस समय यानी आज से १० लाख वर्ष पहले यह 'आस्ट्रेलो पिथेकस' दक्षिण अफ्रीका जंगलों में घूमता था और 'जिंजनथ्रोपस' नामक वनमानुष उत्तर अफ्रीका में। 'आस्ट्रेलो पिथेकस' चिंपेंजी की तरह ही होता था,

पर वह सीधा तनकर चलता था और वृक्षों पर कम, भूमि में अधिक रहता था। उसके दाँत आधुनिक मनुष्यों के दाँत जैसे थे। इसी 'आस्ट्रेलो पिथेकस' का विकास 'पिथेकैंथ्रोपाइन' मनुष्यों के रूप में हुआ, जो अफ्रीका के बाद ही पीकिंग के आस-पास तथा जावा में भी रहते थे।

इसके बाद लगभग ६० हजार वर्ष पूर्व हुए 'निएंडरथल' जो कि प्रारंभिक मानव माने जाते हैं। इनमें बौद्धिक सामर्थ्य होने के प्रमाण मिले हैं। ये औजार बनाते थे, शिकार करते थे तथा अपने मृतकों को समारोहपूर्वक दफनाते थे। किंतु अगले ५० हजार वर्षों में ये क्रमशः नष्ट हो गए और उनका स्थान 'क्रो मैगनन' मानव ने ले लिया, आज से लगभग १० हजार वर्ष पूर्व। ये वर्तमान मानव के पूर्व पुरुष माने जाते हैं।

अब यहाँ जड़ विकासवादी व्याख्या पर एक प्रश्नचिह्न लगता है—मनुष्य में अब कोई महत्त्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन क्यों नहीं हुए ? क्या प्रकृति की विकास-प्रक्रिया रुक गई है ?

दूसरा प्रश्न यह कि प्राणिशास्त्र के अनुसार जब प्रत्येक जीव में सामान्य से विकास में करोड़ों वर्ष लगते हैं, तब मनुष्य जैसे विलक्षण जीव के रूप में वनमानुष का सहसा विकास क्योंकर हुआ ? क्योंकि वनमानुष से मनुष्य की मस्तिष्कीय संरचना तो भिन्न है ही, अन्य प्रमुख भिन्नताएँ भी हैं। शारीरिक संरचना भी बहुत भिन्न है। प्रकृति (स्वभाव) में अत्यधिक अंतर है तथा यौन-आकांक्षाएँ व प्रवृत्तियाँ तथा यौनावेगों का स्वरूप भी दोनों में सर्वथा भिन्न है।

विकासवादी सिद्धांत के अनुसार ६ हजार वर्ष पूर्व सुमेरिया में गुफावासी आदिम मानव नीयोलिथिक रहता था, तब सुमेरियन सभ्यता इतनी विकसित क्यों थी ? विकसित सुमेरियन सभ्यता के अनेकों प्रमाण मिले हैं। वहाँ नगर-जीवन, कृषि-विकास तथा कला क्षमताओं के प्रमाण मिले हैं।

हिंदू सभ्यता और मय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन सभ्यताएँ मानी जाती हैं। दोनों सभ्यताओं में ऐसी गाथाएँ प्रचलित व लिपिबद्ध हैं, जिनमें अंतरिक्ष से आने वाले विमानों और देवताओं के विवरण हैं। यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

भू-वेत्ताओं की कई खोजें भी विकासवाद की जड़वादी व्याख्या को असंगत ठहरा रही हैं। हाथी का ही आकार-प्रकार पहले क्रमशः बढ़ा और अब क्रमशः घट रहा है। पूर्वस्थिति में वापसी विकासवादी विश्लेषण के विरुद्ध है।

विश्व के विभिन्न हिस्सों में प्राप्त हाथियों के फासिल्स के आधार पर भू-वेत्ताओं ने निष्कर्ष निकाला है कि करोड़ों वर्ष पूर्व हाथी की उत्पत्ति हुई तथा उस समय वह कुत्ते के से आकार का होता था।

करोड़ों वर्ष पूर्व हाथी भारत में शिवालिक के जंगलों में विशाल संख्या में विचरते थे। शिवालिक घाटियों के भू-गर्भीय पाषाणों का अध्ययन-विश्लेषण यह बताता है कि चार करोड़ वर्ष पहले ओलिगोसीन युग से ही वहाँ हाथी थे। हाथी का आदिम विकास 'मोरोथिरियम' जीव के रूप में हुआ। पहला हाथी 'फियोमिय' वर्ग का है, जो 'मोरोथिरियम' का विकसित रूप कहा जाता है। 'मोरोथिरियम' गैंडे के से आकार के, स्तनधारी जीव थे। 'फियोमिय' का आकार भी वैसा ही था। इसके बाद अगली पीढ़ी 'टैटरा बेलोडान' हाथियों की थी। फिर आए 'मास्टाडान' और तब 'स्टेगोडान' का आकार-प्रकार 'फियोमिय' से बिल्कुल भिन्न था। 'फियोमिय' तीन फुट ऊँचे थे। 'टैटरा बेलोडान' ५ फुट के, 'मास्टाडान' ८-६ फुट ऊँचे और 'स्टेगोडान' की ऊँचाई १५ फुट थी। इस विशालकाय हाथी के नुकीले बाह्य दाँत १२ फीट लंबे और २७ इंच व्यास के होते थे। अफ्रीका में उस समय जो हाथी थे, वे उनसे कुछ कम ऊँचे थे और उनके दाँत २३ इंच व्यास के तथा १० फुट लंबे होते थे। 'स्टेगोडान' के बाद शिवालिक के जंगलों में

'अरकी डिस्कोडन प्लैनिफ्रानस' नामक हाथी सत्ताधारी बना। इसकी खोपड़ी कुछ कम विकसित थी। हाथी का आकार भी धीरे-धीरे घटने लगा। दाँतों की लंबाई भी। अब १० से १२ फुट ऊँचे हाथी होते हैं। इन दिनों भारतीय हाथियों की ऊँचाई लगभग १०-११ फुट और बाहरी दाँत की लंबाई ८-६ फुट होती है। भू-तत्त्वशास्त्रियों के अनुसार हाथी की ऊँचाई फिर घटने लगी है। संभव है कि अगले १-१।। करोड़ वर्ष में वे फिर ३ फुट ऊँचे अर्थात् कुत्ते जैसे होने लगें।

यहीं हमें एक अन्य पहलू से भी विचार करना होगा। विश्व में तीन हजार लाख वर्षों में जो जीवन-चक्र चल रहा है, वह आरंभिक २५०० लाख वर्षों में अति मंद गति से चला—उसमें केवल आदि जीवन के लक्षण हैं, जैसे—कुकुरमुत्ता, जीवाणु आदि। ५ करोड़ वर्ष पूर्व से जीवन की विकास गति अधिक तीव्र हुई तथा १ करोड़ वर्ष पूर्व पशु व वनस्पति-जगत् में विभिन्न प्रकार के जीवन के प्रमाण मिले हैं। मनुष्य के पूर्वज, जो कुछ लाख वर्ष पूर्व ही दृष्टिगोचर हुए, वे भी ५ लाख वर्ष पूर्व तक गुफावासी और पाषाण के उपकरणों पर निर्भर थे। मनुष्य का मानसिक विकास तो विगत १०-१२ हजार वर्षों में ही हुआ तथा इस बौद्धिक विकास का अधिकतम प्रकाशन पिछले दो हजार वर्षों में हुआ है।

वर्तमान विकासवाद की एकांगी मान्यताएँ अपनी ही विसंगतियों के कारण आप ही संदेहों और आक्षेपों की केंद्र बनती जा रही है। प्रस्तुतकर्ताओं के तर्क उन्हीं के प्रतिपादित तथ्यों को काट रहे हैं। एक ओर तो अमीबा को ह्वेल जैसे विशाल आकार में परिणत होने की बात कही जाती है, तो दूसरी ओर आदिम काल के महागजों को भैंसे जितनी ऊँचाई के हाथियों की स्थिति में लौट पड़ने और महा सरीसृपों को छोटी छिपकली मात्र रह जाने के प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं। आकृति और प्रकृति के इतने अंतर

पूर्वजों और उनके वर्तमान वंशजों में होना गले नहीं उतरता, जिसमें उनकी मूल सत्ता का कोई आधार ही शेष न रह जाए।

● विकासवाद बनाम ८४ लाख—

'थ्योरी आफ यूज एंड डिस्यूज' की बात में तो भी कुछ दम है, उससे इच्छा शक्ति की सामर्थ्य का पता चलता है। यदि हमारे मस्तिष्क में किसी जबर्दस्त परिवर्तन की आकांक्षा हो, तो निश्चय ही वह कोषों के संस्कार सूत्रों (जीन्स-कोष में बटी हुई रस्सी की तरह का अति सूक्ष्म अवयव, जिस पर कोष के विकास की सारी संभावनाएँ और भूत का सारा इतिहास, संस्कार रूप में अंकित रहता है) को बदल सकता है। यदि संस्कार सूत्र (जीन्स) बदल जाएँ, तो नए बीजों में परिवर्तन आ सकता है, पर यह सब चेतन इच्छा शक्ति के द्वारा ही संभव है, किसी वैज्ञानिक प्रयोग से नहीं।

इस बात से जहाँ विकासवाद के सिद्धांत का खंडन होता है, वहाँ ८४ लाख योनियों में भ्रमण और कर्मफल की बात भी सत्य जान पड़ती है। हम देखते हैं कि मनुष्य की इच्छा शक्ति का कभी अंत नहीं होता। मृत्यु के समय एक या अनेक इच्छाएँ बलवान् हो उठती हैं, उसके अनुरूप ही संस्कार सूत्र (जीन्स) में परिवर्तन आ जाता है। जीन्स कभी नष्ट नहीं होते। किसी तरह उनमें चेतना का अंश सिद्ध किया जा सकता है कि अपनी इच्छाओं के वश में बँधा हुआ होने के कारण ही मनुष्य दूसरी-दूसरी योनियों में भटकता रहता है।

अंतिम इच्छाओं के अनुसार परिवर्तित जीन्स जिस जीव के जीन्स से मिल जाते हैं, उसी ओर वे आकर्षित होकर वही योनि धारण कर लेते हैं। ८४ लाख योनियों में भटकने के बाद वह फिर मनुष्य शरीर में आता है। गर्भोपनिषद में इस बात की पुष्टि हुई है—

पूर्वयोनि सहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
स्मरति जन्ममरणानि न च कर्म शुभाशभं विन्दति।।

अर्थात्—उस समय गर्भस्थ प्राणी सोचता है कि अपने हजारों पहले जन्मों को देखा और उनमें विभिन्न प्रकार के भोजन किए, विभिन्न योनियों के स्तनपान किए। अब जब गर्भ से बाहर निकलूँगा, तब ईश्वर का आश्रय लूँगा। इस प्रकार विचार करता हुआ प्राणी बड़े कष्ट से जन्म लेता है, पर माया का स्पर्श होते ही गर्भ ज्ञान भूल जाता है। शुभ-अशुभ कर्म लोप हो जाते हैं और इस सुर-दुर्लभ शरीर के सौभाग्य को भी गँवा देता है।

सौभाग्य से हीकल्स की अगली व्याख्या से ही इस बात का समर्थन हो जाता है। उन्होंने भ्रूण-विज्ञान (एंब्रियोलॉजी) में एक प्रसिद्ध सिद्धांत दिया—"आंटोजेनी रिपीट्स फायालोजेनी" अर्थात् चेतना गर्भ में एक बीज कोष में आने से लेकर पूरा बालक बनने तक सृष्टि में या विकासवाद के अंतर्गत जितनी योनियाँ आती हैं, उन सबकी पुनरावृत्ति होती है। प्रति तीन सेकंड से कुछ कम के बाद भ्रूण की आकृति बदल जाती है। स्त्री के प्रजनन कोष (ओवम) में प्रविष्ट होने के बाद पुरुष का बीजकोष (स्पर्म) १ से २, २ से ४, ४ से ८, ८ से १६, १६ से ३२ इस क्रम से कोषों में विभाजित होकर शरीर बनता है।

गर्भधारण की अवधि लगभग ६ माह १० दिन मानी गई है। इस अवधि में लगभग २४१६२००० सेकंड होते हैं। तीन सेकंड से कम में आकृति बदलने का अर्थ ८०६०६६६ (लगभग ८४ लाख ही) विभिन्न आकृतियों का परिवर्तन आता है। यह चौरासी लाख योनियाँ एक प्रकार से जीव जिन परिस्थितियों में रहकर आ चुका है, उनका छाया-चित्रण होता है।

● अस्तित्व का खोज—

ए० एन० विडेगरी ने अपनी पुस्तक 'कांटेंपोरेशरी थाट ऑफ ग्रेट ब्रिटेन' में विकासवाद को एक सीमा तक ही सही माना है। उन्होंने इस बात पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा है कि सांसारिक अस्तित्व के संबंध में जितनी खोज की जा रही है, उतना मानवी अस्तित्व के बारे में नहीं खोजा जा रहा है। लगता है—मानवी सत्ता, महत्ता और आवश्यकता को आँखों से ओझल ही किया जा रहा है अथवा चेतन को जड़ का अनुगामी सिद्ध किया जा रहा है। बौद्धिक प्रगति के यह बढ़ते हुए चरण हमें सुख-शांति के केंद्र से हटाकर ऐसी जगह ले जा रहे हैं, जहाँ हम यांत्रिक अथवा रासायनिक बोलने-सोचने वाले उपकरण मात्र बनकर रह जाएँगे। तब हम साधन-संपन्न कितने ही क्यों न हों—सभ्यता और संस्कृतिजन्य गरिमाओं से हमें सर्वथा वंचित ही होना पड़ेगा। जड़-जीवन के लिए बाधित की गई चेतना कितनी अपंग हो जाएगी ? जब यह कल्पना करते हैं, तो प्रतीत होता है कि विकास की दिशा में चल रही हमारी दौड़-विनाश से अधिक विघातक सिद्ध होगी।

कई रूपों में हम अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक अच्छे समय में रह रहे हैं। आज एक विधि तथा नियम का स्थिर शासन और निश्चित संविधान है। व्यक्तिगत संपति एवं स्वतंत्रता अभिव्यक्ति अधिक सुरक्षित है। विज्ञान की प्रगति के कारण मृत्युदर घट रही है। व्याधियों पर नियंत्रण किया जा रहा है। औसत आयु बढ़ रही है, शिक्षा का प्रसार बढ़ा है। देश-भक्ति जगी है। सुविधा-सामग्री सस्ती तथा सामान्य हो गई है। शासन की स्थापना में जनता का हाथ है। इतना सब होते हुए भी एक भारी क्षति मानवी-दृष्टिकोण का स्तर बहुत नीचा गिर जाने की हुई है। आज सर्वाधिक ज्ञानी, सर्वाधिक धनवान् और सर्वाधिक सामर्थ्यवान् लोगों का दृष्टिकोण भी संकीर्ण और स्वकेंद्रित हो रहा है। वर्तमान से आगे की उनकी चिंताएँ तथा रुचियाँ जाती रही हैं। आत्मा के संबंध में सोचने के

लिए उसके पास समय नहीं और न यह सूझ पड़ रहा है कि मानव जाति का भविष्य बनाने के लिए, बिगाड़ को रोकने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है ?

खोज और प्रगति के लिए मात्र भौतिक-क्षेत्र में ही अपने को अवरुद्ध कर लेना हमारे लिए उचित न होगा। यह और भी अधिक आवश्यक है कि जिस जीवधारी के लिए प्रकृति की शक्तियों को करतलगत करके, विपुल सुविधा-साधन जुटाए जा रहे हैं, उसकी अपनी हस्ती क्या है ? इस पर भी विचार किया जाए और यह भी खोजा जाए कि जीवन-सत्ता का विकास-विस्तार किस हद तक सुख-शांति की आवश्यकता पूर्ण कर सकता है ? विज्ञान का यह पक्ष भी कम उपयोगी और कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाना चाहिए।

अभावों और असुविधाओं से लड़ने और प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने के लिए जीवधारी की संकल्प शक्ति को प्रखर बनाया जाना चाहिए। साधनों की बहुलता तो मनुष्य को अकर्मण्य और अशक्त बनाती चली जाएगी। प्रगति का मूल आधार विचार-प्रवाह एवं संकल्प-बल ही रहा है। जीवधारियों की प्रगति का इतिहास इन्हीं उदाहरणों से भरा पड़ा है।

जीवन के व्याख्याकारों ने उसके संबंध में विविध प्रकार के मत व्यक्त किए हैं। गतिशीलता, समर्थता, चेतना विकास की क्षमता, भोज्य पदार्थों की ऊर्जा के रूप में परिणत कर सकना, जन्म दे सकने की क्षमता आदि-आदि कितनी शर्तें जीवन-अस्तित्व के साथ जोड़ी गई हैं।

यह सारी विशेषताएँ प्रोटोप्लाज्म में सीमित नहीं हो सकती, उसके लिए कुछ अतिरिक्त क्षमता की आवश्यकता है। हमारी भावी खोज और दिलचस्पी इस अद्‌भुत अतिरिक्तता पर ही केंद्रित होनी चाहिए, जो जड़-परमाणुओं के सीमित क्रियाकलाप से कहीं अधिक ऊँचा है।

विज्ञानवेत्ता रासायनिक विश्लेषण से कभी आगे बढ़ते हैं, तो विद्युतीय स्फुरण के रूप में प्राण-चेतना की व्याख्या करने लगते हैं। मनुष्य शरीर में बिजली का विपुल-भंडार भरा पड़ा है, यह ठीक है और यह भी सत्य है कि मस्तिष्क से विचारों के कंपन विद्युत्-प्रवाह के ही रूप में निकलते हैं और शारीरिक आंतरिक क्रिया-प्रक्रिया संपन्न करते हैं, साथ ही विश्व ब्रह्मांड में हलचल उत्पन्न करके, अगणित मस्तिष्कों पर अपना प्रभाव डालते हैं और जड़-पदार्थों की दिशा मोड़ते हैं। किंतु यह मान बैठना उचित न होगा कि यह बिजली बादलों में कड़कने वाली धूप-गर्मी के रूप में अनुभव आने वाली तथा बिजलीघरों में उत्पन्न होने वाली के ही स्तर की है। भौतिक-बिजली और प्राण-शक्ति में मौलिक अंतर है। प्राण के कारण शरीर और मस्तिष्क में बिजली पैदा होती है, किंतु यह विद्युत्-प्रवाह तक सीमित न होकर अनंत अद्भुत क्षमताओं से परिपूर्ण है।

मानवी विद्युत् आकर्षण—ह्यूमन मैगनेटिज्म तथा जीवनी-शक्ति, मेटाबोलिज्म का संयुक्त स्वरूप प्राण है। उसे विश्वव्यापी महाप्राण का एक अंश भी कहा जा सकता है, क्योंकि भौतिक जगत् में और चेतन-संवेदनाओं में जो कुछ स्फुरणा रहती है, उनका समन्वित समीकरण मानवी-प्राणसत्ता में देखा जा सकता है।

'प्रोजेक्टिजम आफ ऐस्ट्रल बाडी' के लेखक ने बताया है कि शरीर की स्थूल रचना अपने आप में अद्भुत है, पर यदि उसके भीतर काम कर रहे विद्युत् शरीर की क्रिया-प्रक्रिया को समझा-जाना जा सके, तो प्रतीत होगा कि उसमें सूर्य से तथा अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों से धरती पर आने वाली ज्ञात और अविज्ञात किरणों का भरपूर समन्वय विद्यमान है। गामा, बीटा एक्स, लेजर, अल्ट्रा वायलेट, अल्फा वायलेट आदि जितने भी स्तर की शक्ति-किरणें भूमंडल में भीतर और बाहर काम करती हैं, उन सबका समुचित समावेश मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में हुआ है। स्थूल शरीर जड़-पदार्थों

के बंधनों में बँधा होने के कारण ससीम है, पर सूक्ष्म शरीर की संभावनाओं का कोई अंत नहीं। उसका निर्माण ऐसी इकाइयों से हुआ है, जिनकी हलचलें ही इस ब्रह्मांड में विविध-विधि क्रियाकलाप उत्पन्न कर रही हैं।

जीवन-तत्त्ववेत्ता ई० के० लेनकास्टर ने अधिक गहराई तक जीवन-तत्त्व की खोज करने के उपरांत उसे भौतिक-जगत् में चल रही समस्त क्रिया-प्रक्रियाओं से भिन्न स्तर का पाया। उसके निरूपण के लिए जो भी सिद्धांत निर्धारित किए, वे सभी ओछे पड़े। अस्तु उन्होंने कहा—"जीवन सत्ता के बारे में मानव-बुद्धि कुछ ठीक निरूपण शायद ही कर सके। उसकी व्याख्या भौतिक-सिद्धांतों के सहारे कर सकना संभवतः भविष्य में भी संभव न हो सकेगा। जीवन एक स्वतंत्र विज्ञान है और ऐसा जिसकी नाप-तौल पदार्थ-विद्या के बटखरों से नहीं ही हो सकेगी।"

निर्जीव पदार्थ का केवल अस्तित्व है। उसमें अनुभूति नहीं और न जीवन। पौधों में अस्तित्व और जीवन है, पर ज्ञान का अभाव है। प्राणियों में अस्तित्व, जीवन और अनुभूति है, परंतु ज्ञान या स्वतंत्र इच्छा विकसित अवस्था में नहीं है। इसके विपरीत मनुष्य में ये सब गुण विद्यमान हैं, उसमें अस्तित्वपूर्ण जीवन, अनुभूति-ज्ञान और स्वतंत्र इच्छा शक्ति का समन्वय है, इस प्रकार उसे चेतना के सुविकसित स्तर पर प्रतिष्ठापित किया जा सकता है।

जड़ और चेतन की आणविक हलचलों में समानता हो सकती है, पर यह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता कि जड़ का विकास इतना अधिक हो सके कि वह चेतना के उच्चतम स्तरों की परतें उधेड़ता चला जाए। अस्तु हार-थककर वे अन्य प्रकार के उपहासास्पद निष्कर्ष निकालते हैं। उदाहरण के लिए केल्विन,

हैमरीज, किचटर, अरहेनियस की मान्यता है कि 'जीवन किसी अन्य लोक से भूलता-भटकता पृथ्वी पर आ पहुँचा है।'

टैंडाल और पास्टयूर की मान्यता थी कि, जीवन-जीवन से ही उत्पन्न हो सकता है। आरंभ में सेल अपने आप अपनी वंश-वृद्धि किया करते थे, पीछे 'नर-मादा संयोग' का क्रम चला। इसी प्रकार भीतरी-बाहरी अवयवों की संख्या एवं क्षमता भी क्रमशः ही विकसित हुई हैं। जड़ से चेतन की उत्पत्ति अथवा पदार्थ का जीवन में परिवर्तन उन्होंने अशक्य माना है। चेतना की वे स्वतंत्र सत्ता ठहराते हैं।

ब्रह्मांडव्यापी महाशक्तियों में से गुरुत्वाकर्षण की क्षमता सर्वविदित है। आकाश में समस्त ग्रह-नक्षत्र उसी के आधार पर टिके हुए हैं और जीवित हैं।

इलैक्ट्रोमेगनेटिक शक्ति (विद्युत् चुंबकीय क्षमता) अगणित भौतिक-प्रक्रियाओं का नियंत्रण करती है। प्रकाश, ताप, ध्वनि, विद्युत्, रासायनिक परिवर्तन आदि का जो क्रियाकलाप इस जगत् में चल रहा है, उसके मूल में यही शक्ति काम कर रही है। ईथर अपने विभिन्न आकार-प्रकारों में वस्तुओं पर शासन स्थापित किए हुए है।

यह विद्युत् चुंबकीय क्षमता मात्र जड़ नहीं हैं। यदि वह जड़ ही होती, तो अणु-परमाणुओं की संरचना में जो अद्भुत व्यवस्था दिखाई पड़ती है, उसके दर्शन नहीं होते। साथ ही चेतन प्राणियों में दूरदर्शिता, आकांक्षा, भावना जैसी कोई विशेषता न होती और न किसी जीव में कोई ऐसी अतींद्रिय-क्षमता पाई जाती, जिसका जड़-चेतन के साथ कोई सीधा संबंध नहीं हो।

आइन्स्टाइन कहते थे—"आज न सही, कल यह सिद्ध होकर रहेगा कि अणु सत्ता पर किसी अविज्ञात चेतना का अधिकार और नियंत्रण है। भौतिक जगत् उसी की स्फुरणा है। पदार्थ मौलिक नहीं है। चेतना की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही पदार्थ का उद्भव हुआ है। भले ही आज यह तथ्य प्रयोगशाला में सिद्ध न हो सके, पर मेरा विश्वास है कि कभी वह सिद्ध होगा अवश्य।"

जीव-तत्व की शोध के स्वस्थ कदम, आत्मा की स्वतंत्र चेतन सत्ता स्वीकार करने पर ही आगे बढ़ सकेंगे। आत्मा को जड़ सिद्धांतों के अंतर्गत बाँधते रहने से चेतना विज्ञान के उपयुक्त विकास में बाधा ही खड़ी रहेगी और सही निष्कर्ष तक पहुँचने में एक भारी व्यवधान खड़ा रहेगा।

वैज्ञानिक शोधों में जिस जिज्ञासा की आवश्यकता पड़ती है, उसी सूक्ष्म दृष्टि को अपनाकर, आत्म-सत्ता की महत्ता और उसके स्वस्थ विकास की संभावनाओं को समझा जा सकता है। इस लाभ से मनुष्य जिस दिन लाभान्वित होगा, उस दिन उसे न अभाव, दारिद्रता का सामना करना पड़ेगा और न शोक-संताप का।

कठोपनिषद् के अनुसार 'बालक नचिकेता'—महाभाग यम से जीवन और मृत्यु की पहेली का उत्तर पूछता है। तैत्तरीय उपनिषद् में भृगु अपने पिता वरुण से ब्रह्म की प्रकृति तथा सर्वोच्च यथार्थ के बारे में जानना चाहता है। श्वेतकेतु ज्ञान से समृद्ध होकर लौटता है, तो उसके पिता उससे पूछते हैं कि, क्या उसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया ? जनक निरंतर याज्ञवल्क्य से एक के बाद एक प्रश्न पूछते हुए—ऐतरेय उपनिषद् में यही जानना चाह रहे हैं कि—जीव को शुद्ध अंतरदृष्टि से किस प्रकार पूर्णता का बोध होता है ?

मनुष्य सर्वसमर्थ परमात्मा की संतान है। परमात्मा ने अपनी संतान को उन सभी विशेषताओं, विशिष्ट सामर्थ्यों से अलंकृत कर इस दुनिया में भेजा है। वह अपने विकास के लिए न परिस्थितियों पर निर्भर है तथा न बाह्य साधनों पर अवलंबित। अपनी इच्छा शक्ति के आधार पर वह स्वयं का इच्छित विकास करने और अभीष्ट उपलब्धियों को अर्जित करने में सर्वथा स्वतंत्र-स्वनिर्भर है।

इस समाधान को प्राप्त करके ही मानवी चिंतन की सार्थकता और विकासक्रम की पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)